पात्तुम्मा की बकरी
और
बाल्यकाल सखी

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

पात्तुम्मा की बकरी और बाल्यकाल सखी

वैकम् मुहम्मद बषीर

अनुवाद
रत्नमयी देवी दीक्षित

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

प्रथम संस्करण : 1971 (शक 1893)

प्रथम आवृत्ति : 1990 (शक 1912)

Original title : Pathummayude Adu and Balyakala Sakhi (*Malayalam*)
Hindi translation : Pathumma Ki Bakri Aur Balyakala Sakhi

रु. 11.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित।

परिचय

मलयालम उपन्यास-प्रगति की अभी एक शताब्दी पूरी नहीं हुई। सन 1887 में अप्पु नेटुंङाडी ने प्रथम उपन्यास 'कुंदलता' की रचना की थी। विद्वानों के मतानुसार पाश्चात्य देशों — यूरोप—में शेक्सपीयर के समय उपन्यासों का प्रचार हो चुका था। किंतु मलयालम भाषा में साहित्य की इस विधा का आविर्भाव बहुत बाद में हुआ। 'कुंदलता' का प्रकाशन उस समय हुआ था, जब साहित्य-आस्वादन का अर्थ केवल पद्य-काव्यों का आस्वादन था। 'कुंदलता' ने पाठकों के लिए एक नया आस्वादन-क्षेत्र प्रस्तुत कर दिया। फिर भी साहित्य की विधा के रूप में उपन्यास का परिचय साहित्य प्रेमियों को 'इंदुलेखा' के प्रकाशन के बाद ही मिला। ओ. चंतु मेनवन की यह कृति भाव-संकुलता तथा शिल्प-सौष्ठव से अलंकृत प्रथम मलयालम उपन्यास है। न्यायाधीश के उच्च पद को सुशोभित करनेवाले चंतु मेनवन के लिए अंग्रेजी साहित्य से संपर्क रखना सुसाध्य था। 'इंदुलेखा' में उन्होंने अपनी सुपरिचित सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है। मातृसत्ता-संप्रदाय का पतन और अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नयी पीढ़ी का स्वातंत्र्य-बोध, इस उपन्यास की भाव-श्रृंखला की मुख्य कड़ियां हैं।

'इंदुलेखा' के बाद मलयालम में रचित दूसरा मुख्य उपन्यास सी. वी. रामनपिल्ला का 'मार्तंडवर्मा' है। यह 'इंदुलेखा' से सर्वथा भिन्न है। भाव, रूप आदि में यह सर वाल्टर स्काट के 'आइवनहो' से भी आगे निकल गया है। इसका प्रतिपाद्य विषय दक्षिण केरल के उस राज्य का राष्ट्रीय इतिहास है, जो स्वाधीनता के पूर्व तक 'तिरुवितांकूर' के नाम से प्रसिद्ध था। सन 1911 में इस परंपरा को पूर्ण करनेवाली 'धर्मराज' नाम की आख्यायिका इसी लेखनी से प्रकट हुई। इन दोनों कृतियों द्वारा रामनपिल्ला ने चंतु मेनवन के समान स्थान प्राप्त कर लिया।

इसके बाद बीस-पचीस वर्षों तक मलयालम उपन्यास-जगत में कोई हलचल

दिखलाई नहीं पड़ी। इस बीच स्मरण करने योग्य एक ही रचना प्रकाशित हुई। वह थी भवत्रातन नंपूतिरि की 'अप्फंटे मकळ्'। यह काल मलयालम उपन्यासों की भावी उन्नति की गर्भावस्था मात्र था।

चंतु मेनवन के समय तक मलयालम साहित्यकारों का पाश्चात्य साहित्य के साथ लगभग कोई संबंध नहीं रहा। परंतु इस शताब्दी के चौथे दशक में यह स्थिति वदल गयी थी। अंग्रेजी और अन्य पाश्चात्य भाषाओं से अब अनेक श्रेष्ठ ग्रंथों का विवर्तन मलयालम मे हुआ। लेखकों के अंग्रेजी भाषा के परिचय और परिज्ञान की भी वृद्धि होने लगी। इससे उनकी उपन्यास संबंधी धारणा और अभिप्रायों में विशेप सुधार होने लगा। आधुनिक साहित्य का आविर्भाव इसी युग की देन है। रूस की क्रांति और समाजवाद के सूर्योदय ने कैरली के आराधकों को स्वाधीन कर दिया। समाजवाद से उपलब्ध ऊर्जस्वलता तथा पाश्चात्य उपन्यासों मे प्राप्त कला-लक्षणों से मलयालम उपन्यासों के स्वर्ण-युग का सूत्रपात हुआ।

'तकषी'[1], केशवदेव तथा बषीर इस युग के सर्वोत्तम उपन्यासकार है। ये मलयालम उपन्यास-लोक की त्रिमूर्ति माने जाते हैं। 'उरूब' तथा 'पोट्टक्काटु' भी इनके समान स्थान में ही है। इनके वैभिन्य के आधार कला और भाव दोनों हैं। 'तकषी' के उपन्यासों में एक युग का रक्त तथा सत्व है, केशवदेव की रचनाओं में धार्मिक रोष की अग्नि प्रचंड है, बषीर की आख्यायिकाओं मे ज्ञान का प्रकाश प्रसारित होता है। 'उरूब' की कृतियों मे सृजन-शक्ति का गांभीर्य प्रकट होता है, तो 'पोट्टक्काटु' की लेखनी हृदय के भावों का चित्र प्रस्तुत करती हैं।

आधुनिक मलयालम उपन्यासों के जनक हैं 'तकषी' शिवशंकर पिल्ला समाजवादी यथार्थवाद के प्रणेता कहलानेवाले इस उपन्यासकार की रचनाओं मे नवोत्थान-युग के हृदय-स्पंदन गुंजायमान हैं। सर्जन-प्रक्रिया तथा आधारभूत युग की आत्मा और किसी की कृतियों को इतनी भाव-दीप्ति नही दे पायी है। इनका सुप्रसिद्ध उपन्यास—'तोट्टियुटे मकन्' व्यवस्थापित सदाचार-अनुशासनों के प्रति एक आह्वान है। इसी उपन्यास में यथार्थवाद की लक्ष्यार्थ-शैली का सर्वप्रथम आविष्कार हुआ है। 'रंडि टंङषि' (दो सेर) को 'चैम्मीन' जितनी प्रशस्ति तथा प्रसिद्धि नहीं मिली। फिर भी 'तकषी' की सृजन-शक्ति का पूर्ण प्रतिनिधि यही

[1] 'ष' का उच्चारण मराठी के 'क' से मिलता-जुलता या मृदु 'ड़' जैसा किया जा सकता है।

उपन्यास है। इसमें 'तकषी' अपने दृढ़ विश्वासों को वाणी प्रदान करते हैं। केरलीयों की क्रांति-भावना को जगाने में इस छोटे-से उपन्यास का योगदान कुछ कम नहीं है। 'चैम्मीन' धीवर-समुदाय की कहानी है। उपन्यास के अंत में आलिंगन-बद्ध परीक्कुट्टी और करुत्तम्मा की मृत देहों के लहरों के साथ समुद्र-तट पर आ-लगने के साथ एक ऐसी नाटकीयता का विस्तार प्रारंभ होता है, जैसी मलयालम उपन्यासों में तबतक दखी नहीं गयी थी। 'चैम्मीन' में 'तकषी' समुद्र तथा मानवात्मा के अपार गांभीर्य को लेकर एक सुमंवादिता का सर्जन करते हैं।

'एणिप्पटिकळ्' एक बृहदाकार उपन्यास है। स्वतंत्रता के बाद केरल द्वारा अंगीकृत राष्ट्रीय तथा सामुदायिक यात्रा-पथ इसमें स्पष्ट दिखलाई देता है।

केशवदेव के उपन्यासों का अंतःसत्व भी क्रांति का उद्बोध है। 'तकषी' के क्रांति-उद्बोध का आधार एक विशिष्ट प्रत्यय-शास्त्र—मार्क्सवाद है। परंतु केशवदेव का क्रांति-उद्बोध नैसर्गिक है। इनके कथा-पात्र अनीति तथा अनाचारों के विरुद्ध गर्जन करते हैं। इनकी सर्वोत्तम रचना—'ओडयिल् निन्नु' का नायक पप्पु त्याग का प्रतीक है। उसकी सृष्टि के द्वारा लेखक मानवता को मुकुट धारण करवा रहा है। 'तकषी' के 'एणिप्पटिकळ्' के सदृश्य केशवदेव का बृहदाकार उपन्याम 'अयल्कार' है। इसमे लेखक ने एक विशाल पट पर अनेक विभिन्न जातीय समुदायों और उनके विभिन्न सामूहिक जीवनों का चित्रण किया है। संभव है इसको उतनी प्रशस्ति न मिल सके जितनी 'ओडयिल निन्नु' को मिली है। तथापि, भावात्मक व्याप्ति तथा कलामय गांभीर्य ने इस उपन्यास को केशवदेव के सब उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ बना दिया है।

'तकषी' की अत्युत्तम कृतियां जिस युग में रची गयीं वह सामूहिक जीवन के उपन्यासों का युग माना जाता है। इन उपन्यासकारों को समाज में लहरायमान जागृति ने आकर्षित किया था।

'उरूब' और बषीर संकीर्ण सामाजिक ढांचे तथा समाज के नियामक मनुष्यों की आत्माओं के अंतःस्थल तक सीधे पहुंचनेवाले लेखक हैं। 'उरूब' के 'उम्माच्चु' की गिनती मलयालम के उच्च कोटि के उपन्यासों में है। उनका 'सुंदरिळुम् सुंदरन्मारुम्' तो विश्व-साहित्य के बृहत् उपन्यासों का स्मरण कराता है। काल द्वारा मनुष्य में और मनुष्य द्वारा समाज में लाई जानेवाली परिणाम-परंपरा एक चित्रपट के समान इस उपन्यास में दिखाई देती है। 'कुञ्ञमयुं कूट्टुकारुम्' नाम

की ललित आख्यायिका समाज का दर्पण ही है। 'उरूब' बषीर के समान ही सार्वत्रिक प्रतिष्ठा पाये हुए उपन्यासकार हैं। 'तकषी' का क्रांति-उद्‌बोध या केशवदेव का धार्मिक रोष इनमें नहीं दिखलाई पड़ता। ये एक ऋषि की एकाग्रता से सृजन-तपस्या करते हैं। यह एकाग्रता और इससे उत्पन्न गांभीर्य ही इनके उपन्यासों के वैशिष्ट्य हैं।

'पोट्टक्काट्टु' की साहित्य-सृष्टि का प्रारंभ एक ऐसे युग में हुआ जब समस्त विश्व क्षुब्ध था। ये केशवदेव तथा 'उरूब' के समान स्तर के उपन्यासकार हैं। इनकी रचनाओं में काव्यामृत की धारा बहती दीखती है। यथार्थ में कहना यह चाहिए कि ये उपन्यासकार से अधिक कवि हैं। मलयालम भाषा में स्वच्छंदता-प्रस्थान के पुरस्कर्ताओं में ये सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्होंने अनेक ऐसे उपन्यासों और कहानियों की रचना की है, जो सृजन-क्रांति के ताप में झुलसनेवाले पाठकों के हृदयों में शीतल चंदन का लेप कर सकती हैं। परंतु इनकी रचनाएं केवल भावुकता के गुब्बारे नहीं हैं। उदाहरणार्थ, इनकी सर्वोत्तम कृति 'विषकन्या' केवल एक प्रणय-कथा नहीं, समृद्धि तथा ऐश्वर्य की खोज में तिरुवितांकूर से वयनाड्ड के पर्वत-प्रांतों में जा बसने वाले कृषकों की कहानी है—एक प्रवासी जन-समुदाय की आशाओं और निराशाओं का इतिहास है। 'तकषी' के 'चैम्मीन' जैसा, बषीर की 'बाल्यकाल सखी' जैसा, केशवदेव के 'ओटयिल् निन्नुम्' जैसा तथा 'उरूब' के 'उम्माच्चु' जैसा ही मलयालम भाषा का एक उत्तम उपन्यास है—'विषकन्या'। लेखक का इतना ही ध्यान देने योग्य दूसरा उपन्यास है—'तेरुविंटे कथा'। एक साधारण शहर की गली की कहानी द्वारा इसमें लेखक ने देश के सामूहिक मूल्यों का अनावरण किया है।

मलयालम भाषा के उपन्यासकार नयी शैलियों को स्वीकार करने से सामान्यतः विमुख रहे हैं। 'तकषी' और 'पोट्टक्काट्टु' के उपन्यासों का एक वैशिष्ट्य है शिल्पात्मक लालित्य। मलयालम उपन्यासों का प्राण है भाव-तीक्ष्णता। अनन्य साहस से नयी शैली का प्रयोग करनेवाले प्रथम उपन्यासकार एम. टी. वासुदेवन नायर हैं। उन्होंने मार्सल प्रुस्त और जेम्स जायस के कला-मर्मों को आत्मसात् करके, परंपरागत भाव-तीक्ष्णता को हानि पहुंचाये बिना, एक निजी शैली का निर्माण कर लिया। उपन्यासों का विकास कथा-पात्रों के चौतरफ नहीं, उनके अंतरंग में होता है—वासुदेवन नायर की इस नयी आविष्कार-शैली में पाठकों को एक नया

अनुभूति-क्षेत्र उपलब्ध हुआ। इनके उपन्यासों की विशिष्टता इनकी नयी शैली ही नहीं है। चंतु मेनवन ने मातृसत्ता के अध:पतन का जो भविष्य-दर्शन किया था, वह वासुदेवन नायर के उपन्यासों में संपन्न हुआ दीखता है। उनके सब कथा-नायक पारंपरा की कंटक-लता के पाश से मुक्ति पाने के प्रयत्नों में रक्त-साक्षी बने हुए लोग हैं। मलयालम उपन्यासों में सर्वप्रथम विद्रोहियों का प्रवेश करानेवाले भी वासुदेवन नायर ही हैं। उनकी सर्वोत्तम रचना 'नालुकेट्टु' रूढ़िवाद के अंधकार में डूबे हुए एक नायर परिवार के नाश की कथा है। 'कालम्' नाम के नये उपन्यास में स्वाधीनता के बाद के भारत में हुए मूल्य-परिवर्तनों का चित्रण है। यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि अनुपम काव्यात्मक गद्य-शैली, सत्व-गांभीर्य के मूर्तरूप कथा-नायकों, स्त्री के महत्व की प्रतीक नायिकाओं आदि के बल पर इतना लोकप्रिय बन जाने वाला दूसरा उपन्यासकार मलयालम भाषा में नहीं हुआ है।

उपर्युक्त उपन्यासकारों के बाद ही एक दूसरी पंक्ति भी विद्यमान है। 'पार्प्पुर्म्'[1] के. सुरेंद्रन्, ई. एम. कोवूर, 'कोविलन्' आदि नाम इसमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'पार्प्पुर्म्' की कृतियों में सैनिक जीवन तथा केरल के गांवों की कहानियां पर्याय रूप में प्रतिफलित होती हैं। के. सुरेंद्रन् का विषय पारि-वारिक जीवन का संघर्ष है। कोवूर की रचना की विशेषता उनका विषय-वैविध्य है। सैनिक जीवन को 'कोविलन्' जितनी तीक्ष्णता से मलयालम भाषा में किसी ने भी चित्रित नहीं किया। केरल में उपन्यास-साहित्य का संवर्धन करने में इन लेखकों का योगदान कम नहीं है।

वैकम् मुहम्मद बषीर ऐसे उपन्यास-लेखक हैं, जो स्वयं ही मलयालम साहित्य में सार्वत्रिक सम्मति उपार्जित करके प्रतिष्ठित हुए है। इनके समान माने गये लेखकों में से अधिकतर आज केवल निरूपण के पात्र बन गये है। परंतु ये साहित्य-भीम सब प्रकार के निरूपणों के अतीत बन कर खड़े हुए हैं। ये वृद्धावस्था में पहुंच जाने पर भी अगणित पाठकों के आराध्य पुरुष बने हैं। नव-जागरण युग की नव-सृष्टि होने पर भी अनेक अन्य लेखकों के समान उस युग के साथ अंतर्हित नहीं

---

[1] यहां 'र्' का उच्चारण जीभ को पीछे खींचकर रेडियो के 'आर' का जैसा करना चाहिए।

हुए। ये एक युग अथवा एक चरण के ही नियामक नहीं हैं। फिर ये कौन हैं? और कौन हैं इनके कथा-पात्र?

यदि बषीर नाम के लेखक को समझना है तो पहले बषीर नाम के मनुष्य को समझना पड़ेगा। जब स्वातंत्र्य-संग्राम बहुत जोरों पर था, उस समय नवयुवक बषीर घर-बार छोड़कर उसमें कूद पड़ा। कोषिकोट्ट (कालीकट) के समुद्र-तट पर बैठकर उसने नमक बनाया। परिणामस्वरूप पुलिस का दमन सहने और बंदी बनने का अवसर आया। हृदय में स्वातंत्र्य-संग्राम की आग लेकर, बाद में, बषीर ने भारत तथा विदेशों में भ्रमण किया। नवोत्थान के युगांतरकारी लेखकों की भांति बषीर के अंदर भी क्रांति-भावना प्रज्वलित थी। 'जन्मदिनम्' नामी कहानी में बषीर ने घोषणा की—"मेरा रक्त-मांस तथा अस्थि-मज्जा—सब भारत का है।" परंतु इनकी कथाओं का अंतःसत्व धार्मिक रोष अथवा राष्ट्रीय उद्‌बोध नहीं है। अपने अंतःकरण में धधकती हुई क्रांति-भावना को शांत तथा संयत करनेवाला एक विशेष बोध भीइनमें था। इसी ने 'तकषी' और केशवदेव से बषीर को भिन्न बनाये रखा है।

बषीर उन्मादरोग से ग्रस्त हो गये थे। पागलखाने में पागलों के बीच रहकर उन्होंने अपना लघु उपन्यास—'पात्तुम्मायुटे आट्टु' लिखा। उसकी प्रस्तावना में वे स्मरण करते हैं: "चारों ओर बीस-तीस पागल थे। हथकड़ी लगाये, पैरों में बेड़ी पहने आदि कई प्रकार से रखे गये लोग...।" बषीर के असंतुलित मन में भरे विचार या विकार असंबद्ध नहीं थे। प्रपंच का विस्तार और उसमें भरा अंधकार—ये थे उनके उस समय के चिंतन के विषय। बषीर का उन्माद बषीर नामक लेखक के भाग्य का एक अंश है। उनके जीवन-दर्शन के अगाध तल में इस यथार्थता को देखा जा सकता है।

बषीर क्रांतिकारी से बढ़कर एक सत्यान्वेषक हैं। जब उनके समकालीन लेखक समाजवादी यथार्थवाद के आधार पर रचनाएं कर रहे थे तब वे 'एट्टुकाली मम्मूञ्ञु' और 'आनवरि रामन् नायर' की हास्य-कथाओं का प्रणयन कर रहे थे। आजकल 'स्थलत्ते प्रधान दिव्यन्मार', 'आनवारियुं पोनकुरिशुम्', 'मुन्चीट्टु कळिक्कारंटे मकळ्' आदि उपन्यास श्रेष्ठ स्तर की हास्य-कथाएं माने जाते हैं। फिर भी बषीर एक हास्य लेखक नहीं हैं। 'पात्तुम्मायुटे आट्टु' की प्रस्तावना में वे लिखते हैं: "यह एक हास्य-कथा है। परंतु जब मैं यह लिख रहा था तब मेरे

अंदर आग भभक रही थी।" बषीर के लिए उस आग में झुलसने से मुक्ति पाने का उपाय था साहित्य-सृजन।

सामाजिक सच्चाई के प्रति बषीर ने आंखें नहीं मूंदीं। 'उरूब' के समान समाज की संकीर्ण संघटना की अगाधता में उतरने की दर्शन-शक्ति उनमें भी थी। इसका उदाहरण है उनका 'न्टुप्पाप्पय्कोरानेंडार्नु' (मेरे दादा का एक हाथी था) नामक ग्रंथ। वह सामूहिक तल पर एक तूफान उठाने वाला उपन्यास है। बषीर की अधिकतर रचनाएं केरल के मुसलमान समाज की स्थिति का चित्रण करने वाली हैं। 'पात्तुम्मायुटे आटु', 'मुच्चीट्टुकळिक्कारंटे मकळ्' आदि कृतियों में बषीर अपने समाज का निरूपण करने की दृष्टि से नहीं देखते। यथार्थ जीवन से लिये हुए कन्या-पात्र उनके उपन्यासों की प्राण-शक्ति हैं। 'न्टुप्पाप्पकोरानेंडार्नु' में उन्होंने अपने समाज को एक विश्वलेषणात्मक पर्यवेक्षण का विधेय बनाया है।

उपर्युक्त कृति कुञ्ञिपात्तुम्मा नाम की एक निर्दोष बालिका की कहानी है। बषीर पात्तुम्मा के बारे में कहते हैं: "बचपन से प्राणिमात्र को प्यार करने वाली एक छोटी-सी बालिका।" यह कथा अंधविश्वास की धुरी पर घूमने वाले एक परिवार की है। पीढ़ियों से रक्त में भिदी हुई जाति-स्पर्धा का वर्णन बषीर इन शब्दों में करते है: "दादा के हाथी ने छह लोगों को मारा है। छह के छह महावत काफिर थे। एक भी मुसलमान को उस हाथी ने नहीं मारा।" अम्मीजान ने कहा: "वह असल बात जाननेवाला हाथी था।"

बषीर की अन्य कृतियों के समान यह उपन्याम भी छोटा-सा है। इसकी भाषा ललित काव्यात्मक है। कुरान शरीफ के विविध उद्धरण तथा उपाख्यान इसकी शोभा बढ़ाते है। मुसलमान समाज के अंधकारपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालनेवाले अनेक उपन्यास मलयालम में लिखे गये हैं। उन सबमें यही पुस्तक प्रधान है। बषीर ने यह उस समय लिखा था जबकि मुसलमान समाज के विरुद्ध एक शब्द भी बोलने का साहस कोई नहीं कर सकता था। इस पुस्तक के कारण, समाज के पहरेदार बने महान लोगों ने बषीर पर खूब कीचड़ उछालने का प्रयत्न भी किया था। एक समय तो इस कृति पर कानून रोक भी लगा दी गयी थी। बषीर के किसी भी कथा-प्रात्र के प्रति हमारे मन में द्वेष या घृणा उत्पन्न नहीं हो सकती। कुञ्ञिपात्तुम्मा की निराशा तथा अनंत अश्रु-प्रवाह के हेतु हैं उसके पिता। उस पात्र का सृजन भी बषीर ने ऐसे ढंग से किया है कि वह पाठक की दया तथा

सहानुभूति का पात्र बन गया है। इससे सिद्ध होता है कि बषीर क्रांतिकारी से अधिक मनुष्य-प्रेमी हैं।

मलयालम उपन्यासों का बीजमंत्र है समसामयिकता। समय से दूर होने पर 'ओडयिल निन्नु' जैसा उपन्यास भी नीरस हो सकता है। लेकिन बषीर के उपन्यासों के लिए उन परिधियों का आधार आवश्यक नहीं जान पड़ता। इसका मुख्य उदाहरण है उपर्युक्त उपन्यास।

किसी भी पठनशील मलयाली के लिए 'बाल्यकाल सखी' अपरिचित नहीं है। जगत का रहस्य खोज निकालनेवाले बषीर के उपन्यास लोकगीतों के समान सरल और ललित हैं। उनके वाक्यों में वीणा की संस्वरित तंत्रियों जैसी सरसता है। 'तकषी' या 'उरूब' के समान बषीर ने बड़े उपन्यास नहीं लिखे। शब्दों को इतने संयम से प्रयुक्त करनेवाले लेखक मलयालम में बहुत विरल हैं। बषीर के कला-कौशल्य का एक उत्तम उदाहरण है 'बाल्यकाल सखी'। ऊपरी दृष्टि से यह भी एक प्रणय कथा है, परंतु इस प्रणय-कथा की छाया में मनुष्य के भाग्य और जीवन के मर्म बिंदु का दर्शन होता है। उसके एक-एक शब्द में मानो पूजा की घंटी गूंज उठती है। एक छोटे-से मोती में जगत का रहस्य भर देने का यह कला-कौशल चमत्कारिक है।

जिसे प्रारंभ करने पर पूरा किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता, ऐसा बषीर का एक दूसरा उपन्यास है—'पात्तुम्मायुटे आटु' या पात्तुम्मा की बकरी। परंतु यह तो बषीर की सभी कृतियों का सामान्य गुण है। पाठकों के बीच बाल-वृद्ध-युवा के भेद का अतिक्रमण करके प्रचार पा लेने का यह भी एक कारण है।

'बाल्यकाल सखी' के समान 'पात्तुम्मायुटे आटु' भी लगभग सौ पृष्ठों में सीमित है। 'एणिप्पटिक', आळ्कूट्टम्' आदि अनेक बड़े उपन्यास मलयालम में हैं, परंतु उनमें उपन्यास-रचना से संबंधित प्राचीन नियमों का पालन नहीं किया गया है। इस दृष्टि से बषीर को अगण्य मानना पड़ेगा। विक्टर ह्यूगो से प्रेरणा पाये हुए लेखकों ने उनके वाक्प्रवाह का अनुकरण नहीं किया। मलयालम के उपन्यासकार वाक्प्रवाह से नहीं, वाक्संयम से आत्म-आविष्कार सिद्ध करते हैं। 'पात्तुम्मायुटे आटु' बषीर के परिवार की कहानी है। उसके कथा-पात्र उनके भाई, बहन, मां आदि हैं। किंतु वैयक्तिक शैली तथा अभिव्यक्ति की विशेषता से

वह हम सब की कहानी बन जाती है। इस उपन्यास में बषीर ने एक छोटे-से गांव के उस घर को प्रपंचन का विस्तार दिया है।

बषीर व्यक्तियों की, परिवारों की या समूह की ही कथा नहीं कह रहे हैं। वे मानव-जीवन के एक अध्याय के ही वक्ता नहीं हैं। वे हैं सत्यान्वेषक। उनकी भावना पर्वतों की गहनता में, समुद्र के झंझावात में और आकाश की अपारता में विहरण करती है। उनकी गवेषण-बुद्धि प्रपंच की उत्पत्ति तक पहुंचती है। वे अपनी एक नयी रचना कैसे प्रारंभ करते हैं, देखिए: "अनंत शून्यता—अर्थात अभाव...उस अभाव से सब उत्पन्न हुए। ज्ञात तथा अज्ञात सब..." (ओर्मयुटे अरकळ्)।

उन्माद से परिक्षीण हुए अपने मस्तिष्क में प्रपंच-रहस्यों की चिंताएं भर कर अपने गंजे सिर पर हाथ फेरता हुआ बैठकर हंस रहा है बषीर। यही है बषीर। उसकी कृतियों को समझने की रीति भी यही है।

मलयालम उपन्यास विकास की अनेक नयी-नयी अवस्थाओं से गुजर रहा है। सांकेतिक शैली के संबंध में एम. टी. वासुदेवन नायर द्वारा निर्देशित मार्ग से लेखकवर्ग बहुत आगे बढ़ चुका है। नयी पीढ़ी के जीवन-आदर्शों को उन्होंने अस्तव्यस्त किया है। नये मूल्यों, नये जीवन-आदर्शों, तथा नयी सांकेतिक शैलियों के साथ मलयालम उपन्यास आगे बढ़ रहे हैं। इस पुरोगति में, परिवर्तनों के इस तूफान में, बषीर एक दीप-स्तंभ के समान सिर ऊंचा करके खड़े हैं।

— एम. मुकुंदन

पात्तुम्मा की बकरी

1

पात्तुम्मा[1] की बकरी अथवा स्त्रीबुद्धि—इसी की कहानी मैं यहां कहनेवाला हूं।

दीर्घकाल तक इधर-उधर घूमने-घामने और एकांत जीवन बिताने के बाद नाक की नोक पर गुस्सा लेकर मैं अपने घर में स्थिरवास के लिए लौट आया। कैसा अच्छा हुआ मेरा स्वागत! कह नहीं सकता कि कितना गुस्सा आया! बदन में आग लग गयी! मेरा घर···! किसको दोष दूं?

दस-पन्द्रह साल हो गये, मैं अपने घर में रहा नहीं—कभी कदा एक-दो रातें बिताई होंगी, यही याद है। हमारे पारिवारिक घर के सामने बड़ी सड़क के किनारे खपरैलवाला एक छोटा-सा मकान है। जब वह बन रहा था उसमें मैंने बहुत परिश्रम किया था। बहुत मिट्टी और पत्थर ढोये थे। शांति और सौंदर्य बढ़ाने के लिए कई उपाय किये थे। पत्थर की ऊंची दीवारों के अंदर आंगन में सफेद रेत बिछवायी थी। उसके चारों ओर सुंदर फूलवाले पौधे लगवाये थे। जवाकुसुम के पेड़ों के ऊपर मोगरे और चमेली की बेलें चढ़वाई थीं। आंगन के कोनों में अमरूद और अनार के पेड़ लगवाये थे।

मकान के अहाते में दो तलैयां हैं। एक नहाने के लिए, दूसरी पीने के पानी के लिए। एक खास पाखाना सिर्फ मेरे लिए बना है। पिछवाड़े की जमीन में नारियल और केले के पेड़ लगाये गये हैं। और भी तरह-तरह के पेड़ मैंने लगवाये थे।

[1] फातिमा

बहुत-से अच्छी किस्म के आम भी। सड़क के किनारे की ओर बड़े आकर्षक तरीके से केतकी के झाड़ लगवाये थे। नारियल के पत्तों और कंटीली झाड़ियों से छह फुट ऊंची बाड़ बनाकर मकान और जमीन की सीमा बंधवा दी थी। सामने एक फाटक था, जिसमें सदा एक ताला लगा रहता था। उसके सींखचों से अंदर के फूल और पौधे नजर आते थे।

उसी घर में मैं एकांत जीवन बिताता था। चाय-खाना सब मेरी उम्मा[1] फाटक के ऊपर से दे दिया करती थीं। किसी को भी अंदर आने नहीं देता था। आराम से बैठकर लिखा करता था। नहीं तो कुछ पढ़ता था, या पेड़-पौधों की सार-संभाल करता सब जगह घूमता रहता था। उन्हीं दिनों मैं जरा घूमने-घामने के इरादे से बाहर निकल गया। वर्कला, शिवगिरि, मद्रास, एरणाकुलम, कोयं-पुत्तूर आदि स्थानों में तीन साल तक रहा। बाद में बीमार होकर लौट आया, तो देखता क्या हूं कि मेरे छोटे भाई अब्दुल खादर[2] ने वह मकान किराये पर चढ़ा दिया है! एक्साइज़ इंस्पेक्टर श्रीमान रामनकुट्टी अपने नौकर के साथ वहां आराम से रह रहे हैं। उन्हें घर बहुत अच्छा लगा, फिर भी खाली कर देंगे। पर करें क्या? उस गांव में दूसरा कोई मकान मिलता ही नहीं।

इस प्रकार मैं अपने पारिवारिक मकान में रहने लगा। मेरे लिए पूरी तरह से आराम करना आवश्यक है। स्वास्थ्य सुधारना है। मन की समता भंग करने वाला कोई कार्य या शोर-गुल नहीं होना चाहिए। लेकिन उपद्रवों और शोर-गुल के बीच में ही हो गया मेरा आवास!

नारियल के पत्तों से बनी छप्पर की एक छोटी-सी इमारत है मेरा घर। और उसमें रहनेवाले कौन-कौन हैं, जानते हैं?

मेरी उम्मा, मेरी पीठ पर का भाई—अब्दुल खादर, उसकी बीवी—कुञ्ञानुम्मा, उनकी दुलारी संतानें—पात्तुक्कुट्टी, आरीफा, सुबैदा[3]; फिर अब्दुल खादर से छोटा भाई–मुहम्मद हनीफा, उसकी बीवी–ऐशोम्मा[4], उनके प्यारे बच्चे–हबीबु मुहम्मद, लैला, मुहम्मद रषीद[5]; हनीफा से छोटी बहन–आनुम्मा, उसके शौहर–सुलेमान,

[1] मां

[2] कादिर

[3] जुबैदा

[4] आयशा अम्मा

[5] रशीद

उनका लाड़ला बेटा—सैदु मुहम्मद; और मेरा सबसे छोटा भाई—आबु बकर।

इतने हैं मानव। इनके अलावा, कहीं-कहीं से आकर उम्मा की शरणार्थिनी बनी कई बिल्लियां; उनसे डरकर छत में सदा दौड़ते-भागते रहनेवाले अनेक सहस्र मूषक वीर; घर के ऊपर बैठकर कांव-कांव करके ऊधम मचानेवाले कौए; इन सबके अतिरिक्त, मेरी उम्मा की अपनी ही सौ-एक मुर्गियां और उनके असंख्य बच्चे, और इनको चोंच से उड़ा ले जाकर खानेवाले गीध और चील पेड़ों पर!

घर मे सदा कुहराम मचा रहता है। रषीद और सुबैदा अभी घुटनों पर नहीं चलते। दूध पीते समय छोड़कर बाकी सारे समय रोते रहते हैं। आरीफा अब चलने लगी है। मगर उसका धर्म ही रोते रहना है। उससे थोड़े बड़े है— लैला और सैदु मुहम्मद। दोनों अच्छे रोने वाले हैं ही। अबी और पात्तुक्कुट्टी भी रोने में किसी से पीछे नहीं हैं। जिद करने में भी। अबी का स्कूल का नाम हबीब मुहम्मद है, परंतु घर मे वह अबी कहलाता है। वह और पात्तुक्कुट्टी पहली कक्षा में पढ़ते हैं। बच्चे, बिल्लियां, मुर्गियां, औरतें, चीलें, कौए, चूहे—सब मिलकर अच्छा-खासा मेला बनाये रखते हैं।

इस महान कोलाहल के बीच मैंने देखा—आकर खड़ी है एक बकरी।

है तो बकरी ही—भूरे रंग की, बहुत चुस्त। सुबह-सुबह ही वह हमारे घर आकर रसोई में घुस जाती है और अपना प्रातः भोजन संपन्न करती है। फिर कमरों में जाकर सोये हुए बच्चों को खूंद-खूंदकर जगाती है। इसके बाद आंगन में निकलती है और वहां पड़े हुए कटहल के पत्ते जल्दी-जल्दी खाने लगती है। आंगन के कोने में जो कटहल का पेड़ खड़ा है वह अपनी वृद्धावस्था को पहुंच चुका है। तो भी उसमें फल होते है। बकरों-बकरियों के खाने के लिए पत्तों की भी कमी नहीं होती। वह बकरी गिरे हुए सब पत्ते खा लेने के बाद दूसरी ओर खड़े जामुन के पेड़ के पास जाकर जमीन पर पड़ी हुई सब जामुनें चट कर जाती। फिर ऊपर नजर दौड़ाती। हरी पत्तियों के बीच हल्के जामुनी रंग में डूबे हिम-बिन्दुओं की जैसी जामुनें भरी पड़ी होतीं। पिछले दोनों पैरों पर खड़ी होकर निचली डालों पर लगे फल खाने का प्रयत्न करती। पर पहुंच न पाती। इन डालियों को ऊपर की ओर खींचकर बांध किसने दिया है?

जब वह इस प्रकार घात लगाये खड़ी होती, कहीं कटहल का पत्ता गिर पड़ता। वह दौड़कर उसे चाटकर मुंह में पकड़ लेती और बड़े चाव से चबाकर

खा जाती। इतने में उम्मा या कुंजानुम्मा या ऐशोम्मा या आनुम्मा—कोई भी आंगन झाड़ने के लिए झाड़ू लेकर पहुंच जातीं। बकरी भागकर कमरे में घुस जाती और वहीं सब जगह चक्कर काटती फिरती।

यह किसकी बकरी है? कैसी स्वच्छंदता से घूम रही है! कहां-कहां घुसती फिरती है, क्या-क्या करती है, पर कोई चूं तक नहीं करता! कैसा घर है यह? न कोई कुछ पूछनेवाला, न सुननेवाला!

मैं आरामकुर्सी पर बैठा था। कमरे के अंदर किसी कागज के फाड़े जाने जैसी आवाज हुई। छोटे दरवाजे से मैंने देखा। वही बकरी मेरे बिस्तर पर खड़ी है और किताब खा रही है।

पेटी के ऊपर 'बाल्यकाल सखी' और 'शब्दङ्ङल'—इन दोनों पुस्तकों के नये संस्करणों की एक-एक प्रति रखी थी। उनमें वह खा रही थी 'बाल्यकाल सखी' को। आगे के पैरों से उसे दबाकर दो-दो तीन-तीन पन्ने जीभ से चाट-चाटकर मुंह में ले लेती और खाती जाती। खाने दो! अच्छी बकरी है। 'शब्दङ्ङल' भी है। उसे भी खाने की हिम्मत करेगी यह?

कोई संकोच नहीं। 'बाल्यकाल सखी' पेट में चली गयी। तुरंत ही वह 'शब्दङ्ङल' पर झपट पड़ी। दो मिनट के अंदर पूरी पुस्तक खा गयी। अब उसने मेरा कंबल खाना शुरू किया। मुझसे नहीं रहा गया। मैं कूदकर उसके पास पहुंचा।

"हे अज-सुंदरी, भवती, उस कंबल को न खाइयेगा। उसकी कीमत पचास रुपए है। और इसकी दूसरी प्रति मेरे पास है भी नहीं। मेरी पुस्तकें और भी बहुत-सी हैं। वे सब मंगाकर आपको निःशुल्क ही समर्पित कर दूंगा।"

इतना कहकर उसको भगाया। वह फिर कटहल के पेड़ के नीचे भाग गयी। वहां दो-तीन पत्ते पड़े थे। देवीजी उन्हें उदरसात करने लगीं। मैंने उम्मा को बुलाकर पूछा—"किसकी है यह बकरी?"

उम्मा ने कहा—"अपनी पात्तुम्मा की है।"

"ओहो! इसीलिए इसको इतनी स्वतंत्रता है।"

पात्तुम्मा की बकरी है—बात स्पष्ट हो गयी। सुबह होने के पहले ही पात्तुम्मा उसे खोलकर छोड़ देती है। और उसे उपदेश देती है—"वे लोग आंगन झाड़कर सारे कटहल के पत्ते फेंक दें, इसके पहले ही तू वहां जाकर पेट भर खा ले, मेरी

प्यारी बकरी !" बकरी सीधी सड़क से घर आ जाती है और अपनी करामातें शुरू कर देती है।

यह बकरीवाली पात्तुम्मा मेरी बहन है—अब्दुल खादर से छोटी। रहती है एक-डेढ़ फर्लांग दूर, बाजार के पीछे। अपने शौहर कोच्चुण्णी को सुबह ही चाय-नाश्ता देकर काम-धंधे पर भेज देती है। कोच्चुण्णी महाशय कई व्यापार आजमा चुके हैं। आजकल रस्सी खरीदने-बेचने का धंधा करते हैं। सुबह के गये शाम के बाद ही घर लौटते हैं।

कोच्चुण्णी के जाने के बाद बर्तन मांजकर और घर की सफाई आदि निपटाकर पात्तुम्मा अपनी बेटी खदीजा के साथ इस घर में आ जाती है। आती है बड़े रंग से। पीछे-पीछे पूंछ जैसी लगी रहती है खदीजा। चलती ऐसे है जैसे स्वप्न में हो। परंतु घर के अंदर पहुंचते ही उसका भाव बदल जाता है। उसकी आवाज ऊंची हो जाती है यह जरूरी भी है। उम्मा की सबसे बड़ी लड़की है न वह ! इसलिए उसका घर में दूसरों से ज्यादा अधिकार है।

पात्तुम्मा आयी तो मैंने जरा ध्यान दिया—वह है, उसकी बकरी है, उम्मा हैं, छोटी बहन है, दो भाभियां हैं। अब क्या होनेवाला है ?

पात्तुम्मा ने घर के अंदर घुसते ही छोटी बहन, उम्मा और भाभियों से कुछ प्रभुत्व-भाव से पूछा—"किसी ने मेरी बकरी को एक बूंद चावल का मांड़ भी दिया ?'

उम्मा ने जवाब दिया—"सौ काम पड़े हैं, तुझे अपनी एक बकरी की ही सूझती है।"

पात्तुम्मा ने भाभियों से पूछताछ की, बहन को डांट बतायी—"तुम सबको मैं अच्छी तरह जानती हूं, री !" मालूम नहीं आनुम्मा ने उसे क्या जवाब दिया। परंतु पात्तुम्मा ने उम्मा से अपने जीवन के कष्टों के बारे में खूब रोना रोया। बाद में उलाहने के साथ कहा—"कोई कुछ भी न करे। मेरी बकरी को जन जाने दो। फिर देखूंगी।"

बकरी के जन जाने के बाद पात्तुम्मा क्या दिखानेवाली है ?

जामुन का पेड़ अपने फलों के द्वारा मंदहास कर रहा था। मैं उसे देखता हुआ आरामकुर्सी पर पश्चिम की ओर करवट लिये पड़ा था। इसी बीच शरणार्थी बिल्लियां 'म्याऊं म्याऊं' करती हुई मेरे पास आयीं। एक कूदकर मेरी गोद में

ही बैठ गयी। बहुत साफ तो नहीं थी वह।

यह क्यों मेरी गोद में आयी ? परस्पर परिचय तो है नहीं ! फिर भी, देखते ही मैं उसको पसंद आ गया होऊंगा। खैर ! उसी हालत में मैंने सड़क की ओर देखा, तो बहुत-सी लड़कियां जा रही थीं। हाई स्कूल में पढ़ने वाली थीं। सब मेरी ओर ही देख रही थीं। क्यों भला ?

पात्तुम्मा की बकरी की पीठ पर एक कौआ आकर बैठ गया। उसे लेकर बकरी मेरे सामने आ खड़ी हुई। कौए ने गर्दन झुकाकर टेढ़ी आंख से मेरी ओर देखा, मानो कह रहा हो—"कभी देखा है, ऐसी याद तो नहीं आती।"

मेरे पास के बरामदे में कई मुर्गियां कुछ चुग रही थीं। कौआ उड़कर उस मंडली में एक कोने पर जा बैठा। मुर्गियों ने उसे इस प्रकार देखा, मानो पूछ रही हों—"इसका यहां क्या हक है ?" परंतु कौए को कोई हिचकिचाहट नहीं थी। "मैं ही यहां का अधिकारी हूं"—इस प्रकार का भरोसा दिखाते हुए उसने भी चुगना आरंभ कर दिया।

अब उस सभा में प्रवेश किया एक सफेद बिल्ली ने। मुर्गियों में जो बड़ी, काली मुर्गी थी उसे यह दखलंदाज़ी अच्छी नहीं लगी। उसने बिल्ली के सिर पर अपनी चोंच दे मारी। बिल्ली गुर्रा उठी। पूंछ उठाकर, शरीर के तमाम रोमों को फर-हराकर ऐसे खड़ी हो गयी, मानो कहती हो—"अभी दिखाये देती हूं। मुझे इस घर में अधिकार है या नहीं। हिम्मत हो तो आओ, एक बार और चोंच मार-कर देखो !"

"उम्मा ! आपने देखा ?" कुछ घर्राते स्वर में बोलते हुए मेरे सबसे छोटे भाई आबू बकर ने अब उस सभा में प्रवेश किया। धुले और इस्तरी किये हुए कपड़े, कंघी करके चमकाये हुए बाल, चर्र-चूं बोलनेवाली चप्पलें—यह उसका वेष-विधान ! वह इस समय केवल अबू कहलाता है। लोगों का कहना है कि महा-शय लेफ्टिस्ट हैं। दिन में दो बार कपड़े बदलते हैं। उम्मा कहती हैं, उनके पास साठ जोड़ी जूते हैं। सींक जैसे दुबले-पतले हैं, परंतु आवाज सारी दुनिया को गुंजा देनेवाली है। फिर, बड़े मानी भी हैं। मेरे आते ही बाहर निकल गये। अब तक महाशय मेरे कमरे में सर्वाधिकारी बनकर राज कर रहे थे। यह कमरा बाप्पा ने मेरे और अब्दुल खादर के पढ़ने के लिए घर के एक किनारे पर बनवा दिया था।

उन्हीं दिनों अब्दुल खादर को मैंने अलग कर दिया। वह उम्मा के पास सोने लगा। अब अब्दुल खादर के सब बाल सफेद हो गये हैं। देखने में मेरा बड़ा भाई जैसा लगता है। उसने मेरे कमरे की जोड़ी पर, दूसरी ओर एक कमरा बनवा लिया है। हनीफा और उसका परिवार पुराने कमरे में ही गुजारा करते हैं। अबू को जब मैंने निकाला, वह अपनी पेटी, बिस्तर, किताबें, लैंप आदि लेकर हनीफा के कमरे में जा धमका।

अबू की आवाज सुनते ही बिल्लियां भाग गयीं। कौआ उड़ गया। मुर्गियां तितर-बितर हो गयीं। पात्तुम्मा की बकरी पिछवाड़े औरतों के पास पहुंच गयी। चीलें और दूसरे पक्षी चुप होकर कहीं छिप गये। सब बच्चों ने रोना बंद कर दिया। घर निःशब्द हो गया।

अबू की आवाज जोर से उठी—"भाईजान, यह सब होने क्यों देते हैं? बिल्लियां, बच्चे, मुर्गियां, बकरी, कौए···सब! बकरी को पालने के लिए देख ली एक जगह! सबको मैं ठीक कर दूंगा। उम्मा, लाइये वह बेंत और मेरी गुलेल!"

पात्तुम्मा व्यग्र होकर बोल उठी—"खदीजा! खेद ला अपनी बकरी को! जान गये, हमारा इस घर में कोई हक नहीं! चल, आ! उम्मीजान, हम जाते हैं।"

अबू ने चिल्लाकर कहा—"मैं भी देखूंगा कि इस घर में मुझे कोई हक है या नहीं। आज मैं हनीफा भाईजान और उनके बाल-बच्चों को निकाल बाहर कर दूंगा।"

मैं भी जोर से बोल पड़ा—"ए, छोकरे! खबरदार—अब इस घर में तेरी आवाज सुनायी दी तो! हड्डी-पसली चूर कर दूंगा! सींक जैसा तो है, और चिल्लाहट तो सुनो! हनीफा अपने बच्चों को लेकर कहां रहेगा, बता तो?"

"हनीफा भाईजान अपनी जमीन पर मकान बना के रहें!"

बहुत ठीक। ऐसी एक बात चल भी रही है। मकान बनाने के बारे में हनीफा ने मुझसे कहा भी है। उसने यहां से दो मील पर पहाड़ी की तलहटी में सड़क के किनारे अस्सी सेंट जमीन खरीद रखी है। वहां अभी उसने बड़ी किस्म के केलों आदि का बाग लगाया है। उसमें एक मकान भी बनाना है। उसके लिए सब सामान और मदद की उम्मीद मुझसे करता है। कहता है—मेरे पास बिल्कुल

पैसा नहीं है। चार बजे तड़के उठकर रोज पैदल वहां जाता है और सिंचाई करके सात बजे वापस आता है। उसके बाद अबी और लैला को साथ ले नदी में नहाने जाता है। बाप्पा और बच्चे एक-दूसरे से बहुत हिले हुए हैं। दोनों बच्चे कहते हैं—जब हमारी जमीन पर मकान बनेगा, हम आपको भी साथ ले जायेंगे। सैदु मुहम्मद ने भी यही कह रखा है। उसकी मां—आनुम्मा और बाप—सुलेमान पास की ही जमीन में अपने रहने के लिए मकान बना रहे हैं। उनका आधा काम हो भी चुका है। पत्थर आदि भी लाकर रख लिये हैं। हनीफा ने अभी यह कुछ भी नहीं किया है।

मैंने कहा—"लगता है, हनीफा के पास पैसा नहीं है रे!"

अबू धीरे से बोला—"हनीफा भाई साहब बड़े कंजूस है। उनके पास बहुत पसा है।"

"झूठ बात है! तू क्या जाने?"

अबू रबर की गुलेल और कुछ गोल पत्थर लेकर चिड़ियां मारने चला गया।

पात्तुम्मा बकरी को पुकारती हुई इसी तरफ बढ़ आयी—"आ बकरी! वह कुछ नहीं करेगा!" अबू पास ही खड़ा था। देख कर जोर से बोली—"अरे, अबू, जरा अदब से रहाकर। बड़े भाईजान आये हैं, तुझे पता नहीं?"

"सुना भाईजान? बड़ी बहन साहबा अब मेरे साथ तू-तकार से बात करती हैं। आपके आने से इनका रोब बढ़ गया है"—अबू ने कहा।

अबू से कितनी बड़ी है पात्तुम्मा! उसने इसे 'अरे अबू' कह दिया तो इसकी बेइज्जती हो गयी!

मैंने कहा—"तो अब तुझे हम लोग 'अबू साहब' कहा करेंगे। चल, जा यहां से।"

पात्तुम्मा मेरे पास आ गयी। इधर-उधर देखा—कोई नहीं था। फिर गुप्त-भाव से बोली—"भाईजान, किसी को पता न चले—आनुम्मा को मालूम होगा तो लड़ने आ जायगी। आगे, भाईजान, मुझे पैसा बिल्कुल मत देना, खदीजा के लिए दो-ठो कान के फूल बनवा देंगे तो काफी होगा। हनीफा को भी पता न चले, भाईजान! छोटे भाईजान, उम्मा, अबू—किसी को नहीं।"

मैंने भी धीरे से पूछा—"कान के फूल चांदी या सोने के?"

पात्तुम्मा फिर इधर-उधर देखकर बोली—"सोने के भाईजान! मगर

किसीसे कहेंगे तो नहीं ?"

"बिल्कुल नहीं। पूरी तरह छिपाकर रखूंगा।"

इस तरह मैं पात्तुम्मा के साथ एक पोशीदा करार में बंध गया।

पात्तुम्मा ने कहा—"कान-फूल फौरन चाहिए।"

"देखूंगा"—मैंने जवाब दिया।

कान के फूलों का यह मसला इतनी जल्दी बना, इसका एक कारण है। जब मैं आया, मैंने एरणाकुलम से तीन छतरियां मंगाकर अब्दुल खादर की बेटी पात्तुवकुट्टी, हनीफा के बेटे अबी और आनुम्मा के बेटे सैदु मुहम्मद को दी थीं। पात्तुम्मा की बेटी खदीजा को नहीं दी थी। ये चारों बच्चे हमउम्र हैं। शरारत में, चिल्लाने में, रोने में—सभी में ये बराबर हैं। लेकिन खदीजा को छतरी नहीं दी। क्यों ? सच बात तो यह है कि मैं भूल गया था। कोई बात नहीं। उसे सोने के कान-फूल मिल जायेंगे।

पात्तुम्मा भीतर जाकर घर के किसी काम में लग गयी थी। मौका पाकर आनुम्मा मेरे पास आयी। वहहमलसे थी। पात्तुम्मा पढ़ी-लिखी नहीं है, आनुम्मा लिखना-पढ़ना जानती है। इसलिए आनुम्मा की बातचीत पात्तुम्मा की जैसी नहीं होती। वह धीरे से बोली—"आगे आप मुझे पैसा न दीजियेगा—मुझे बर्तन खरीद दें तो बस होगा। वह भी अभी नहीं, जब हम नये घर में जायें तब। मगर यह बात आपा से न कहियेगा।"

अर्थात् पात्तुम्मा को पता न चले, चल गया तो कहेगी—"बस बस, तेरी लुका-छिपी ! बड़ी पढ़ी-लिखी मेम साहब ! मेरी गैरहाजिरी में तूने बड़े भाई-जान से सब-कुछ हड़प नहीं लिया ?"

इसीलिए बर्तनों की बात कानोंकान किसी तक न जानी चाहिए। आनुम्मा के लिए घर के बर्तन खरीद देने और इस बात को पोशीदा रखने के इकरारनामे पर भी मैंने दस्तखत कर दिये। इस तरह आखिर शांति से बैठा तो सुनायी दिया एक शोर, चिल्लाहट ! 'उल्लाटत्तिपारू ! उल्लाटत्तिपारू ! नहीं, मैं नहीं ले जाऊंगी !"

लैला की आवाज थी। यह किसको इस तरह पुकार रही है ? बहुत राह देखनी नहीं पड़ी। बेइज्जती से छटपटाता हुआ, रोनी आंखों से सैदु मुहम्मद मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। नंग-धड़ंग ! बड़ी चिढ़ के साथ उसने कहा—"बड़े

मामूजान, लैला-बी मुझे 'उल्लाटत्तिपारू' कहती हैं !"

हाय रे ! एक लड़के को लड़की के नाम से पुकारा जाय ! और पुकारनेवाली खुद एक लड़की !

"लाओ बेंत !"

सैदु मुहम्मद चट बेंत लाने चला गया।

मैंने पुकारा—"लैला, आ इधर !"

वह आयी—वैसी ही नंगी-धड़ंगी ! सैदु मुहम्मद जो बेंत लाया उसे देखकर बोली—"चचाजान को नहीं ले जाऊंगी।"

"मत ले जाना"—कहते हुए मैंने सैदु मुहम्मद के हाथ से बेंत ले लिया। लैला ज़ोर से रोने लगी।—"अम्मी ! अम्मी !" वह अपनी मां को 'अम्मी' ही कहती है।

मैंने कहा—"बुलाओ अपनी अम्मी को ! अपने अब्बा को भी बुला लो ! और अपने उप्पुप्पा को भी बुलाओ। सबको मैं मारूंगा।"

'उप्पुप्पा' कहते हैं नाना या दादा को। मेरा मतलब लैला के नाना से था। वे महाशय रहते हैं हनीफा के केले के बाग के पास। वहां किसी जगह एक रेलवे स्टेशन बननेवाला है। तब उस जमीन की अच्छी कीमत होगी। इतना ही नहीं, सारी जगह सुधर भी जायगी। यह सब सोचकर ही लैला के उप्पुप्पा ने हनीफा से वह जमीन खरीदवायी है।

लैला ने कहा—"अम्मी को मत मारो ! अब्बा को भी मत मारो। उप्पुप्पा को भी मत मारो···।"

"तो आगे से किसी को 'उल्लाटत्तिपारू' मत कहना।"

"नहीं कहूंगी।"

"तुम्हारे अब्बा मकान बनवायेंगे तो वहां सैदु मुहम्मद को ले जाओगी ?"

"बड़े चचाजान को भी ले जाऊंगी।"

अह ! कर दिया खत्म इस तरह मुकदमे को ! मुआवजे के तौर पर सैदु मुहम्मद को दो टाफी और एक बढ़िया किस्म का केला दिया। मेरे पास इस तरह के केले, टमाटर, अनन्नास, लोजेंजेज़ आदि सबका भंडार भरा था। इनमें से सिर्फ टाफी और लोजेंजेज़ ही मैंने पैसा देकर खरीदी थीं—बच्चों का रोना बंद करने के लिए। बाकी सब मेरे भाइयों, कोचुण्णी और सुलेमान ने खरीद

दिये थे। स्वास्थ्य के लिए मुझे फल खाना जरूरी था।

ये सब चीजें पहले मैं अपनी मेज पर रखा करता था। एक दिन सैंदु मुहम्मद मेज पर चढ़कर चोरी से खाता हुआ पकड़ा गया। उसको बड़ा अफसोस हुआ, क्योंकि मेरे सामने वह चोर साबित हो गया। वह जोरों से रोया। आगे उसे रोना न पड़े, इसलिए मैं वह सब सामान पेटी में रखने लगा।

सैंदु मुहम्मद को केला और टाफी खाते देखकर लैला को रोना आ गया। मैंने उसे भी एक केला और दो टाफियां दीं। अब मानो गंध पाकर आ पहुंची अरीफा। उसको भी वे चीजें दीं। दो-दो टाफी सुबैदा और रशीद को भी उनके हाथों भेज दीं। फिर इत्मीनान के साथ आनुम्मा से कहकर एक प्याला चाय मंगवायी और एक बीड़ी जलाकर, एक किताब लेकर आरामकुर्सी पर लेट गया।

इस तरह जब आराम कर रहा था, मेरी उम्मा पास आयीं। बड़ी-बी की उम्र अब सड़सठ या सतहत्तर साल की होगी। मगर दांत एक भी नहीं गिरा है। सुबह चार बजे उठती हैं। फिर नहरों में भिगोये नारियल के पत्तों को बुनने लगती हैं। बाद में उन्हें सूखने के लिए आंगन में फैलाती हैं, ताकि सूरज निकलते ही सूखने लगें [1] यह काम हो जाने पर घर के लिए पानी भरती हैं—दोनों हाथों में एक-एक घड़ा भरकर उठा लाती हैं। पात्तुम्मा, आनुम्मा, ऐशोम्मा, कुंञानुम्मा आदि को डांटती-फटकारती हैं। शोर मचाती हैं। रात के दस बजे तक लगातार काम ही काम करती रहती हैं। पात्तुम्मा हमेशा हमारे घर में रात नहीं बिताती। फिर भी पूरी-पूरी तीन औरतें तो घर में हैं ही। उम्मा क्यों काम करती है? चुपचाप आराम से बैठ नहीं सकतीं? इन प्रश्नों का उत्तर उम्मा के पास तैयार रहता है—"इन लोगों को कुछ आता-जाता नहीं। घर संभालना सीखा ही नहीं।" ठीक है—तो फिर उनको सीखने दें! घर की जिम्मेदारी उन पर छोड़ दें, शांति तो रहेगी घर में?

इसका उत्तर वे देतीं—"तुझे घर के बारे में क्या मालूम? अकेला जीव! बीता भर का पेट!"

---

[1] केरल में साधारण मकानों के छप्पर नारियल के पत्तों से छाये जाते हैं। इसके लिए पत्तों को डंठल के बीच से चीरकर दो भाग कर लेते हैं। फिर उन्हें एक-दो दिन पानी में डाल रखते हैं। भली भांति नरम हो जाने पर उन्हें निकालकर एक विशेष प्रकार की बुनायी करके मजबूत टट्टे बनाते हैं। सूखने पर वे छप्पर छाने के लिए तैयार हो जाते हैं।

इससे भी मैं हार न मानता तो कहतीं—"उन सबके पास छोटे बच्चे हैं। उन्हें फिर कौन संभालेगा?"

"एक बच्चों की देख-रेख करे, बाकी सब घर का काम करें।" मैं उपाय बताता।

"तू यह सब कह सकता है—अकेला जीव, बीता भर का पेट! ला, मुझे थोड़े रुपए दे!"

हमारी बातचीत हमेशा ही रुपयों पर आ टकराती है। यह मेरे स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है। इसलिए उम्मा कुछ भी भार उठायें, कोई भी काम करें, मैं देखने पर भी चुप्पी साध लेता हूं। क्यों उम्मा से रुपयों की मांग करवाऊं?

उम्मा ने आते ही कहा—"रे! मुझे एक दस रुपए दे!"

"अब मैंने उम्मा को क्या उपदेश दिया था, जिसके कारण रुपए मांगने पड़े?" प्रश्न-सूचक दृष्टि से मैंने उम्मा को देखा।

उम्मा धीमी आवाज में कहती गयी—"अब्दुलखादर को पता न चले। हनीफा भी न जान पाये। आनुम्मा और पात्तुम्मा को भी मालूम नहीं होना चाहिए।"

मैंने भी धीमी आवाज में रहस्य के भाव से पूछा—"कुंजानुम्मा और ऐशोम्मा को बताने में कोई ऐतराज नहीं है?"

उम्मा रूठ गयीं—"देना हो तो दे, बताना किसीको नहीं।"

मैंने भी गुस्सा दिखाया। पूछा—"आने के बाद कितने रुपए दे चुका मैं इस घर में? आपने खुद मुझसे खुल्लमखुल्ला और छिपाकर कितने रुपए लिए है?"

उम्मा ने फिर रहस्य-भाव से कहा—"मैं यह कहां कह रही हूं कि तूने रुपए नहीं दिये? अभी मुझे दस रुपयों की जरूरत है।"

"मैंने जो दिये वे सब कहां हैं? बहुत दिन तो नहीं हुए? गये कहां सब?"

उम्मा ने धीरे से कहा—"धीरे-धीरे बोल। सब अब्दुल खादर ने ले लिये।"

"उसको मैंने अलग रुपए जो दे रखे हैं! लंगड़ा कहीं का, आने दो उसको?"

अब्दुल खादर को बचपन में लकवा मार गया था। बाप्पा ने हजारों रुपए खर्च करके इलाज कराया। आखिर दायां पैर लंगड़ा रह ही गया। वह पैर बहुत पतला है। बाकी शरीर तगड़ा है। लोहे की छड़ी लेकर चलता है।

"उससे कुछ मत कहना! आखिर इतने बड़े परिवार की देखभाल वही तो करता है? वह न होता तो देखते! तू अकेला जीव, अपना पेट! कहां-कहां

घूमता रहा। चाहे जहां रहकर कितने रुपए खर्च किये तूने ?"

"उसका जुर्माना मैं दे चुका। मैने भी तो बहुत रुपए यहां खर्च किये हैं।"

"अरे, धीमे ! धीमे बोल ! नहीं किसने कहा ? कोई न जान पाये, पर मुझे अभी दस रुपए दे !"

"इसके पहले किसी की जानकारी के बिना जितना रुपया मैंने दिया, वह सब अब्दुल खादर कैसे ले सका ? उसने यह बात कैसे जानी ?"

"अरे, चुप ! अबी और पात्तुक्कुट्टी ने जाकर बता दिया।"

"उम्मा, आपसे मैं एक पोशीदा बात बताता हूं। और किसी से मत कहिए। मेरे पास कुल मिलाकर पांच रुपए का एक नोट है। उसके अलावा एक पैसा भी नहीं है।"

"तो ला, वही दे दे"—उम्मा ने फौरन कहा।

मैंने इधर-उधर सावधानी से देखा। फिर भीतर जाकर वह नोट और एक केला लेकर आ गया। केले की सुगंध पाकर पात्तुम्मा की बकरी आ धमकी। केला छीलकर मैंने खाया। कुछ खाते हुए देखकर उम्मा की शरणार्थी बिल्लियां और उनके संरक्षण में पलनेवाली मुर्गियां भी हाजिर हो गयीं। केले का छिलका मैंने पात्तुम्मा की बकरी को दे दिया। फिर इधर-उधर देखा—बकरी अब भी कुछ और मिलने की आशा से खड़ी थी। परंतु मनुष्य के नाम पर कोई नहीं था। केवल पात्तुम्मा की बकरी, मुर्गियां और बिल्लियां दिखलायी पड़ीं। बड़ी सावधानी से छिपाकर मैंने पांच का नोट उम्मा की गोद में डाल दिया। उम्मा ने भी चारों ओर बहुत बारीक नजर से देखा। कहीं कोई आदमी नहीं था। उन्होंने नोट को मोड़कर अपनी ओढ़नी के कोने में बांधा और सलूके के अंदर छिपा लिया। फिर वे ऐसे बैठ गयीं, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

मैंने कहा—"अब और बातें बताइये, उम्मा ?"

उम्मा ने कहा—"देख रे ! मेरी उम्र इतनी हो गयी। कौन जाने कब कब्र की ओर जाना पड़े। मेरी एक चाह है—तू एक लड़की को ले आ, फिर तेरे साथ कुछ दिन आराम से रह लूं।"

मैंने जोर से कहा—"कहीं चुपचाप बैठा रहूं तो कोई बैठा भी नहीं रहने देता। पात्तुम्मा ! आनुम्मा ! आओ इधर ! मेरा पेटी-बिस्तर ले आओ और एक कुली को बुलवा लो।"

दोनों बहनें दौड़कर आयीं। आनुम्मा ने कारण की खोज की—"उम्मा ! क्या बात हो गयी ?"

पात्तुम्मा ने कहा—"भाईजान से उम्मा ने पैसा मांगा होगा।"

मैंने तुरन्त टोका—"नहीं, यह बात नहीं है।"

उम्मा उठकर पिछवाड़े की ओर चल दीं। दो बहनें "क्या है, उम्मा ?" पूछती हुई उनके पीछे हो लीं।

थोड़ी शांति हुई। मैं बैठा रहा और एक प्याला चाय आनुम्मा से मंगवा कर पी और बीड़ी पीने लगा। इस बीच देखा—पात्तुम्मा की बकरी आंगन में खड़ी हुई जीभ लंबा-लंबा कर दियासलाई की पेटी खाने का प्रयत्न कर रही है। अभी-अभी वह पेटी बरामदे में मेरे बिल्कुल पास रखी थी। मैंने उसमें से सलाइयां निकालकर खाली पेटी बकरी को दे दी। बकरी उसे बहुत स्वाद के साथ खाने लगी। खा चुकने के बाद भी वह खड़ी ही रही तो मैंने कहा—"अजसुंदरी ! सलाइयां मुझे चाहिए। खाली पेटियां और ढूंढ़ कर दूंगा।" इतने में पात्तुम्मा ने उसे चावल का पानी लाकर दिया। मैंने पात्तुम्मा से कहा—"पात्तुम्मा, तुम्हारी बकरी मेरी दो किताबें खा गयी है।"

मानो मैंने कोई भयानक आरोप कर दिया हो, ऐसे भाव से पात्तुम्मा ने जवाब दिया—"ऐसा मत कहिये भाईजान ! मेरी बकरी कुछ नहीं कर सकती !" फिर वह धीरे से बोली—"वह कानों के फूलों की बात…?"

"याद है"—मैंने भी उसी स्वर में जवाब दिया।

"कोई जान न पाये"—और भी धीमी आवाज में कहती हुई वह रसोई की ओर चली गयी।

रशीद और सुबैदा रो रहे थे। सहानुभूति दिखाने के लिए अरीफा, सैदु मुहम्मद और लैला ने भी रोना शुरू किया। बीच-बीच में लैला कहती जाती—"अम्मी को नहीं ले जायेंगे।" इतने में अबू एक खत लेकर आया। खत मुझे दिया और एक लकड़ी लिये गरजता हुआ भीतर चला गया—"क्या बात है ?" सबका रोना बंद। घर निःशब्द हो गया।

मैंने खत खोलकर पढ़ा। सुदूर मद्रास नगरी से आया था वह। राजश्री एम. गोविंदन की पत्नी डाक्टर पद्मावती अम्मा ने एक पुत्र को जन्म दिया है। जच्चा और बच्चा सकुशल हैं।

मां-बेटे के लिए शुभ कामना करते हुए मैंने तुरंत उत्तर लिखा। बाला को एक छोटा भाई मिला, इसलिए उसे मुबारकबादी दी। उसके पिता को उपदेश दिया कि उसकी पूरी संपत्ति ढाई रुपये बैंक में जमाकर रखने को उससे कहें। श्री एम. गोविंदन् ने दूसरी बार महान पितृपद पाया है, इसलिए उनकी प्रशंसा की। साथ-साथ यह भी लिखा कि एम. नारायणन् नंपियार, एम. ए, के. सी. एस. पाणिक्कर, डेविड जार्ज, जानम्मा, पाम्कुट्टियम्मा, के. ए. कोडुङ्ङल्लूर, के. पी. जी. पणिक्कर (गोपकुमार) शरतकुमार रामजी, आर. एम. माणिक्कन आदि मद्रासवाले मित्रों से भेंट होने पर उनके कुशल-समाचार पूछें और उनको खबर दे दें कि मैं अभी अपनी उम्मा के साथ रह रहा हूं। एक बार फिर से माता-पिता और बच्चे के लिए शुभ कामनाएं करते हुए पत्र समाप्त किया। लिफाफे में डालकर चिपकाया और पता लिखने के बाद अबू को बुलाया—"जल्दी लेजाकर एजेंसी डाक में डाल आ!"

यह हुक्म देते हुए एक बात और याद आ गयी। मैंने कहा—"ठहर जा, तेरे बारे में बहुत-सी शिकायतें सुनने में आती हैं। तू अब्दुल खादर की दूकान से सब पैसा उठा-उठाकर चाहे जिसे उधार देता है। चाहे जिन मासिक पत्रिकाओं की एजेंसी ले रखी है। किसी की बात नहीं मानता। क्या यह सब सच है?"

सारे आरापों का उसने एक उत्तर दे दिया—"मुझे कोई फूटी आंखों भी देखना नहीं चाहता।"

मेरे कुछ और कहने के पहले ही उसने कहा—"भाईजान आये तब सेदेखिये—बड़ी बहनें, भाभियां, उम्मा, सबने मिलकर आंगन और घर के चौतरफ झाड़-झूड़ कर सफाई कर डाली और कूड़ा-करकट इकट्ठा करके जला दिया। मैंने पहले कितनी बार कहा, किसीने जरा भी परवाह नहीं की। साफ कह दिया कि तू खुद झाड़ू लगा ले। अब क्यों? बस, भाईजानसे पैसा हड़पने का उपाय है। पैसेवाला आया तो उसे खुश करने के लिए सब दौड़ पड़े। मैं क्या पैसेवाला हूं? मेरे पास दौलत कहां है···? भाईजान! हम यह आंगन पक्का करायेंगे और घर का छप्पर बदल कर खपरैल का बनवायेंगे।"

मैंने पूछा—"इसका मतलब?"

"भाईजान रुपया दें। मेरे पास कहां से आयेगा रुपया?"

खाना खाकर पत्र लेकर वह चला गया। उसके दूकान पर पहुंचने के बाद ही

अब्दुल खादर घर आ सकेगा। उसके जाते ही हनीफा आया।

हनीफा फौज में था। उससे छूटने पर दर्जी का काम शुरू किया। साथ ही एक साइकिल की दूकान भी खोली। वह जरा फैशनवाला है। डबल धोती, जुब्बा, चिकना चट शेव किया हुआ मुंह और कंघा करके चमकाये हुए बाल—यह है उसकी वेष-भूषा। इस समय एक मामूली लुंगी ही पहने था। कुछ बात जरूर है। मैं चुप रहा। अगर कुछ बोल गया तो···

पर उसने शुरू किया—"भाईजान, मैं अपनी जमीन बेचने का इरादा कर रहा हूं। आपको कम दाम में दे दूंगा।"

"अभी क्यों बेच रहे हो?"

"पैसा नहीं है हाथ में। होता तो एक कमीज बनवाकर न पहन लेता?"

"जमीन का क्या दाम चाहते हो?"

"भाईजान को कुछ सस्ती दूंगा—दस हजार दे दें।"

दस हजार रुपये! हनीफा ने उस जमीन की क्या कीमत दी थी, सो मुझे मालूम था। मैंने विषय बदल दिया और पूछा—"आजकल तुम घर में खर्च के लिए क्या देते हो?"

दो-तीन साल पहले वह देता था—दो आने रोज। उसकी बीवी, दो बच्चे और वह खुद—सबके खाने-पीने आदि पूरे खर्च के लिए थे ये दो आने! बिस्तर किसी के लिए भी उसने नहीं बनाया। तेल-साबुन आदि भी कभी नहीं लाया। वह सब इसी दुअन्नी के अंदर चलता था। अब्दुल खादर उसे भला-बुरा कहता, पर उसे जरा भी शरम न आती। कुछ ज्यादा कहा तो फौरन जवाब देता—"अच्छी बात है, मैं फौज में चला जाता हूं। सरकार को मेरी जरूरत है। उस समय मेरे बीच में पड़ने से एक समझौता हो गया था। वह दो आने से चार आने पर पहुंचा था। फिर धीरे-धीरे वह बारह आने हो गया। परंतु लोग कहते हैं, मेरे बाहर जाते ही वह फिर दुअन्नी पर जा टिका। अब उसका एक और बच्चा हो गया है। इसलिए उससे ज्यादा पैसा दिलाने का एक न्याय और हो गया है। पर उसने मेरे प्रश्न का उत्तर ही नहीं दिया। कहा—"छोटे भाईजान की ज्यादती के कारण जीना ही मुश्किल हो गया है।"

"क्यों, अब्दुल खादर ने क्या ज्यादती की?"

"नोटों का एक बंडल लेकर मेरी दूकान में आये। बहुत-से भलेमानुस वहां बैठे

हुए थे। सबके सामने उन नोटों को मेरे मुंह पर मारकर कहने लगे—"देख रे, फेंका पैसा पैसों को खींच लाता है, समझा?" फिर लंगड़ाते-लंगड़ाते चले गये। मैं शरम से गड़ गया। "मैं रोज आपको बीड़ी नहीं खरीद के देता? मेरा पैसा ही फेंका जाने पर पैसों को क्यों नहीं खींच लाता?"

न्याय तो ठीक है, पर मैंने जो कहा सो उस न्याय का उत्तर नहीं था—"अब रषीद भी तो है न? तुम घर में राशन के लिए क्या देते हो?"

तड़ाक से उसने उत्तर दिया—"मैं फौज में चला जाऊंगा। सरकार को मेरी जरूरत है।"

गुस्से से वह अंदर घुस गया और खाना खाकर दूकान चला गया।

मैं जब भोजन कर रहा था, पात्तुम्मा को अज-सुंदरी आकर मेरे साथ भोजन को तैयार हो गयी।

मैं चिल्लाया—"पात्तुम्मा, दौड़ के आ।"

पात्तुम्मा भागकर आयी और उसे बुलाकर आंगन में ले गयी।

मैंने कहा—"उसे रस्सी से बांध दे।"

पात्तुम्मा ने उत्तर दिया—"बांधना उसे पसंद नहीं है, भाईजान!"

शाम हुई तो कोच्चुण्णी आया। वह कभी-कभी इस घर में ही रह जाता है। तब मेरे साथ सोता है। मेरी एक बाजू उम्मा, कोच्चुण्णी के आगे अबू। पास के कमरे में हनीफा और उसका परिवार। अब्दुल खादर सपरिवार भीतरवाले कमरे में। बरामदे में बोरों के परदे के अंदर सुलेमान और परिवार। जिस दिन कोच्चुण्णी हमारे घर में नहीं सोता, उस दिन एक जुलूस लेकर ही अपने घर जाता है। वह नारियल के पत्ते की मशाल[1] जलाकर आगे-आगे चलता है। उसके पीछे पात्तुम्मा, पात्तुम्मा के पीछे उसकी पूंछ के समान दस साल की खदीजा। उसके एकदम पीछे बकरी। ऐसा होता है उसका जुलूस।

[1]केरल में आज भी साधारण लोग नारियल के पत्ते सुखाकर मशाल जैसे बांध कर रखते हैं। इधर-उधर रात को जाने पर वही जलाकर प्रकाश के लिए हाथ में ले लेते हैं।

2

20

पात्तुम्मा की बकरी की शरारत सुबह से ही शुरू हो गयी। करीब आठ बजे होंगे। शरीर और सर में तेल लगाकर मैं कसरत कर रहा था। तब सुनायी दिया आंगन में बच्चों का शोर-गुल।

"उल्लाटत्तिपारू! उल्लाटत्तिपारू।"

"पूंछ पकड़ो! पूंछ पकड़ो।"

"सींग पकड़ो! सींग पकड़ो!"

बात क्या है? मैंने खिड़की से देखा। खास कुछ नहीं था। पात्तुम्मा की बकरी अबी के हाफपैंट का सामने का हिस्सा पूरा खा चुकी थी और जो बाकी बचा था उसे मुंह में पकड़े हुए थी। अबी उसका गला पकड़े था। पात्तुक्कुट्टी उसकी पूंछ पकड़कर खींच रही थी। सैदु मुहम्मद सींगों से भिड़ा हुआ था। अरीफा घबरायी हुई खड़ी थी। रषीद और सुबैदा का ध्यान किसी बात पर नहीं था। वे अपने अंगूठे चूसते आंगन में बैठे थे। लैला बकरी के पेट से लिपटी हुई उसे गाली दे रही थी—"उल्लाटत्तिपारू! उल्लाटत्तिपारू!"

मैं तौलिया लपेटकर कमरे से बरामदे में उतर आंगन में गया और मैंने बकरी को कान पकड़कर अबी से अलग किया। बकरी ने अबी के हाफपैंट का सामने का हिस्सा ही नहीं खाया था, उसकी एक जेब भी खा डाली थी।

और पूछताछ की तो मालूम हुआ कि पात्तुम्मा की बकरी गुनाहगार नहीं है। अबी के पैंट की जेब में खाने की कोई चीज थी। उसमें से एक उसने बकरी को दे दी। बाकी अपने पैंट के सामने खोंसकर उसके सामने खड़ा हो गया और उससे बोला—"खाओ।" बकरी ने उसको पूरा चट कर लिया और जेब में जो-कुछ था उसे भी जेब सहित खा डाला। अबी ने कहा—"बाप्पा मारेंगे।"

"क्यों, पहले होश नहीं था? अब मार खाओ।" थोड़ी देर बाद मैंने कहा—"डरने की कोई बात नहीं। बाप्पा से कोई नहीं बतायेगा।"

पात्तुक्कुट्टी, लैला और सैदु मुहम्मद—तीनों को बात गुप्त रखने की चेतावनी दी। लैला से यह भी कह दिया कि आगे से किसी को 'उल्लाटत्तिपारू' कहकर नहीं पुकारना।

कसरत पूरी करके मैं नदी में स्नान करने जाने लगा तो सैदु मुहम्मद और

पात्तुक्कुट्टी को बुलवा भेजा। मगर उनके साथ अबी और लैला भी आ गये। वे आज अपने बाप्पा के साथ नहाने नहीं गये थे। मेरी राह देख रहे थे। कारण कोई खास नहीं था। लैला ने अबी की स्लेट-पेंसिल तोड़ दी थी, इसलिए बाप्पा दोनों को नहाने नहीं ले गये। पात्तुक्कुट्टी और अबी को स्लेट-पेंसिल खरीदने के लिए हनीफा ने तीन पैसे दे रखे थे।

मैं सबको नदी में ले गया और नहला-धुलाकर किनारे पर खड़ा किया। उसके बाद खुद तैरकर, डुबकियां लगा-लगाकर नहा रहा था कि सुनायी दी अबी की पुकार—"बड़े चचाजान!" मैंने मुड़कर देखा। कोई पानी में उतरा तो नहीं था। तैरता हुआ मैं घाट पर पहुंचा और पूछा—"क्या है रे?"

अबी ने कहा—"मेरा पैंट नहीं है।" उसने अपना मतलब समझाया कि मेरे पास लाज ढकने के लिए कुछ नहीं है, बिल्कुल नंगा रास्ते से कैसे जाऊंगा?

मैंने पूछा—"तू आया भी तो ऐसे ही था न?"

वह सब ठीक, पर अभी-अभी अबी ने नदी पार करानेवाली एक नाव में अपने स्कूल के एक लड़के को देखा। वह लुंगी पहने था। इसलिए अबी की लाज ढकने के लिए मैंने एक तौलिया दे दिया। यह देखकर पात्तुक्कुट्टी को भी शरम आने लगी। उसको भी चाहिए कुछ पहनने को।

मैंने नहाकर अपने कपड़े पहन लिये और दूसरा तौलिया धोकर पात्तुक्कुट्टी को पहना दिया।

लैला और सैदु मुहम्मद की शरम लगने की उम्र नहीं हुई थी। कहीं उनको भी शरम लगने लगती तो मैं क्या करता? मेरे पास तो दो ही तौलिये थे।

घर लौटा तो देखा कि अब्दुल खादर और हनीफा आपस में जबानी जंग छेड़े हुए हैं। कारण और कुछ नहीं, कल राशन खरीदने के लिए हनीफा ने घर में कुछ भी नहीं दिया था। यह बात अब्दुल खादर को मालूम हो गयी, सो हनीफा को अच्छा नहीं लगा। इसलिए आज वह सपरिवार चला जानेवाला है।

"निकल आ, ऐशोम्मा।" हनीफा ने चिल्लाकर कहा—"बच्चों को भी बुला।"

वह और उसके बालबच्चे उसके केले के बाग में झुग्गी-झोंपड़ी बनाकर रह लेंगे। मैंने देखा, वह जो लुंगी पहने था वह मेरी थी। मैंने पास जाकर पूछा तो यह कहता हुआ चल पड़ा कि अभी कुछ कहने-सुनने की फुरसत नहीं है, बहुत काम पड़ा है। देहली के बाहर निकलकर उसने कहा—"इस घर में मुझे कोई हक नहीं

रह गया।"

हनीफा अपनी दर्जी की दूकान को चला गया। मैंने अब्दुल खादर से पूछा—"देख, इस शोर-गुल से तू मुझे बचा नहीं सकता? उस इंस्पेक्टर से एक बार और क्यों नहीं कहता कि वह घर खाली कर दे?"

अब्दुल खादर ने जवाब दिया—"यहां आपको क्या कमी है? तेल, साबुन, घी, दूध, चाय, बीड़ी, माचिस, फल, टमाटर, सब तरह के केले—सब संभालने के लिए उम्मा, मैं, अबू, कोच्चुण्णी, सारे के सारे! और चाहिए क्या?"

अब्दुल खादर एक स्कूल मास्टर था। बड़ा वैयाकरण भी। बहुत पहले एक दिन उसने उम्मा से कहा था—"मातुश्री स्वल्प शुद्ध जल दान करने की कृपा कीजिये।" उस दिन उम्मा ने भात परोसनेवाला चमचा उसपर दे मारा था। बाप्पा ने उसे सांत्वना दी थी—"तू वैसा ही कहा कर बेटा! और मुझे क्या कहकर पुकारेगा?"

"पिताश्री!"

उम्मा ने एक और जमा दिया। उसके बाद वह 'उम्मा' और 'बाप्पा' ही कहता रहा—लंगड़ा कहीं का!

मुझे और उसे एक ही दिन स्कूल में भरती कराया गया था। तब वह मुस्लिम स्कूल था। उंपियण्णन् नाम के एक भक्त का बनवाया हुआ था।

पुतुश्शेरी नारायण पिल्ला सर उसमें पहली कक्षा के मास्टर थे। हम दोनों को 'अ-आ' लिखना-पढ़ना सिखानेवाले वे ही थे। अब्दुल खादर स्कूल के अंदर और बाहर बड़ा गुंडा माना जाता था। मैं स्कूल में बहुत अदबवाला लड़का था। नारायण पिल्ला सर उसको बहुत मारा करते थे।

अब्दुल खादर बायां पैर जमाकर खड़ा होता और दायां पैर घुमाकर जोर से लड़कों को मारता। मुझे भी उसने वैसे मारा था। कभी-कभी अपने दायें पैर का तलवा नाक की सीध में लाता और पूछता—"ऐसा कर सकते हो?" नहीं। कैसे कोई कर सकता? सबके पैर उसके जैसे ढीले-ढीले टंगे हुए थोड़े ही थे। और कोई वह सरकस न दिखा पाता।

"तो सूंघकर देख"—उसके लंगड़े पैर का तलवा दूसरे सूंघकर देखें! किसी ने नहीं सूंघा तो घूंसा मारता। लड़के दूर जाकर खड़े हो जाते तो वह छाती पीट-पीटकर रोने लगता। लंगड़ा होने के कारण लोगों के दिल में उसके लिए हमदर्दी

थी। वह उसका जी भर के फायदा उठाता। वह कुछ भी करे, गुनाह होगा दूसरे का। उसके घूंसे खाने के लिए लड़के खड़े हो जाते। मैं भी खड़ा हुआ हूं। मैंने कितने घूंसे खाये, इसकी गिनती नहीं है। उसकी स्लेट और पुस्तकें मुझे ढोनी पड़तीं। मैं बड़ा था न? न्याय से तो छोटे भाई को बड़े भाई की स्लेट और पुस्तकें ले जानी चाहिए थीं। पर यहां बात उलटी थी। उसकी चीजें मुझे ढोनी पड़ती थीं। नहीं तो—घूंसा!

मैंने बहुत मार खायी। बहुत भार उठाया। रोष का तूफान ही अंदर भरा था। लेकिन करता क्या? स्लेट और पुस्तक सड़क पर छोड़कर मेरे पास आकर खड़ा होता और हाथ उठाता हुआ धीरे से पूछता—"मेरी सलेट-पुत्तक लेगा?" रोज ही जवाब देता—"नहीं।"

फिर न्यायवाद करने लगता—"मैं तेरा बड़ा भाई नहीं हूं? लेता है कि नहीं?"

"न...हीं!"

झट से एक पैर पर जमकर खड़ा हो जाता और दूसरा पैर घुमाकर मारता सीधे मेरे सीने पर। मैं चक्कर खाकर गिर पड़ता। वह जरा दूर खड़ा होकर हुक्म देता—"उठ के ले सब! देरी से पहुंचा तो 'सर' मारेंगे।"

मैं पड़े-पड़े दुख के साथ सोचता—यह कहां का न्याय है? छोटा भाई घूंसा मारे, बड़ा भाई सह ले। और सब किताब, स्लेट आदि भी ढोये। मैं लेटा रहता। इस पर वह मेरी छाती पर चढ़ बैठता और पूछता—"क्या और घूंसा चाहिए?" मैं हारकर कह देता—"नहीं, सब उठा लूंगा।"

मैं उठता और उसकी भी स्लेट और किताबें उठाकर चल देता। ऐसे कितने दिन! कितने घूंसे!

एक दिन मुझे एक बुद्धि सूझी। घूंसा मारने के लिए हाथ घुमाने के पहले ही उसके अच्छे पैर पर जमा दी मैंने एक लात। और वह चारों खाने चित्त, रास्ते पर! लपककर मैं चढ़ बैठा उसकी छाती पर। परंतु यह मानो मेरा कोई बहुत बड़ा अन्याय हो गया हो, इस प्रकार उसने पूछा—"यह क्या? मैं छोटा भाई नहीं हूं? मेरी छाती पर चढ़ बैठना ठीक है?"

मैंने घूंसा मारने के लिए हाथ उठाया तो वह रोकर बोला—"मुझे घूंसा मत मारो। मैं भाईजान का छोटा भाई हूं।"

"छोटा भाई ! हूं ! पहले क्यों नहीं याद आया तुझे ?"

"अब मैं रोज याद रखूंगा।"

"अबे ! कुत्ता दिखलाई पड़ता है तो पहले उसे पत्थर कौन मारता है ?"

"भाईजान।"

"नदी में नहाते वक्त डुबकी लगाकर कौन पहले दूसरे किनारे पर पहुंचता है ?"

"भाईजान।"

"घर से कुछ चुराया हो तो तुझे कौन देता है ?"

"भाईजान।"

"नारापिल्ला सर की मेज से चाक निकालकर तुझे कौन देता है ?"

"भाईजान।"

"तो फिर ?"

"आगे से भाईजान की सलेट और किताब उठाकर मैं चलूंगा।"

"अबे ! तू अपनी ही उठाया कर।"

"तो फिर आगे कौन चलेगा ?"

"मैं।"

उस दिन से ही अब्दुल खादर छोटा भाई बना।...लंगड़ा कहीं का !

"सुन भाई," मैंने कहा—"तू क्यों नहीं उस इंस्पेक्टर से कहता घर खाली कर देने को ? इस घर के शोर-गुल से मेरी नाकों दम आ गया है। यह बात तेरी समझ में नहीं आयेगी।"

"भाईजान ! वह आदमी घर ढूंढ़ रहा है। एक्साइजवाले भी ढूंढ़ रहे हैं। कुछ दिन और ठहर जाइये।"

वह अपनी लोहे की छड़ी खट-खट करता लंगड़ाता हुआ चला गया। मैं एक अनन्नास आधा काटकर छील रहा था, तब पातुम्मा की बकरी खिड़की के पास और बच्चे दरवाजे पर हाजिर हो गये।

केला, घी और पूट्टू[1] मिलाकर एक-एक कौल मैं सभी बच्चों को दे देता था।

[1] चावल के आटे और नारियल के मिश्रण से बना एक भोज्य पदार्थ। गरीब लोग चावल के आटे के बदले कसावा अर्थात टापिओका के आटे के साथ बनाते हैं। उसे 'कप्प पूट्टु' अर्थात कसावा का पूट्टु कहते हैं।

अनन्नास का एक-एक टुकड़ा भी देता था। यह सब पाकर बच्चे शोर मचाने के लिए दूसरी जगह चले जाते थे। लेकिन अबी, पात्तुक्कुट्टी, लैला, अरीफा, खदीजा आदि सभी से छिपकर आनुम्मा का बेटा सैदु मुहम्मद जैसे मेरे सामने आया भी और नहीं भी आया, इस तरह—खंभे के पीछे खड़ा हो जाता। उसको मैं एक हिस्सा ज्यादा देता।

नाश्ता खत्म करके केले आदि फलों के छिलके मैं पात्तुम्मा की बकरी को दे देता। फिर चाय का प्याला लिये बरामदे की कुर्सी में आ बैठता। वही समय होता जब स्कूल के विद्यार्थी उधर से निकलते थे। हमेशा जैसे वे लड़कियां मुझे देखती जाती होंगी। उनके उस देखने में छिपा रहस्य बाद में समझ में आया। वह आगे बताऊंगा।

उस दिन भी रोज जैसे अबी और पात्तुक्कुट्टी स्कूल गये थे। थोड़ी देर हुई, अबी ने सड़क के नुक्कड़ पर लुके-छिपे हाथ के इशारे से मुझे बुलाया।

क्या हो गया? मैं निकलकर उसके पास गया। पात्तुक्कुट्टी एक नारियल के पेड़ के नीचे छिपी बैठी थी। मेरे पहुंचते ही अबी ने कहा—"चचाजान, बाप्पा ने सलेट-पेंसिल खरीदने के लिए आधा आना दिया था...।"

"आधा आना?"

"पैंट की जेब में था।"

"क्या कहता है रे?"

"उसी जेब में था जो बकरी खा गयी थी।"

ओहो! पात्तुम्मा की बकरी ने पैसे भी खा लिये। मैंने कहा—"अच्छा, तुम लोग यह बात किसी से न कहना। देखूं कहीं से पैसे मिलते हैं कि नहीं।"

अबी ने कहा—"उम्माम्म[1] देखेंगी तो मारेंगी।"

"छिपके खड़े हो जाओ।"

मैंने पात्तुम्मा से दो आने उधार लिये और आधआना अबी और पात्तुक्कुट्टी को देकर उन्हें स्कूल भेज दिया।

पात्तुम्मा की बकरी आंगन में ही खड़ी थी। कभी भी तीन-तीन पैसे[2] के दो

[1] नाना। उप्पाप्प—नाना।

[2] केरल में पाई को पैसा कहा जाता था। इस प्रकार तीन-तीन 'पैसों' के दो सिक्कों का अर्थ हुआ आधा आना या दो कालणा। काल—पाव; अणा—आना।

सिक्के गिर सकते हैं—मैं राह देखने लगा। पर हुआ कुछ नहीं। मेरी आंखें बकरी के पीछे ही लगी रहीं।

इसी बीच उत्सुकता से मुझे देखती हुई झुंड-की-झुंड विद्यार्थिनियां सड़क से निकलने लगीं। मैं खुश हो गया—वे जानती हैं, मैं कौन हूं! इसलिए तो ऐसे देखती हैं। उनके बीच इस प्रकार बातचीत भी होगी (याद रखिए, यह सिर्फ मेरी कल्पना है)—

घुंघराले बालवाली—आरामकुर्सी पर लेटा हुआ वह आदमी कौन है, जानती हो?

हरिणाक्षी—जानती क्यों नहीं? सुप्रसिद्ध साहित्यकार—वैकं मुहम्मद बषीर।

कोकिलवाणी—अपनी आटोग्राफ बुक में उनके हाथ से कुछ लिखवाऊंगी।

मार्जारनयनी—नहीं नहीं, वे नहीं हैं। देखती नहीं वह झोंपड़ा जैसा घर?

मधुवाणी—जा री! बिल्ली की जैसी आंखोंवाली! तू क्या जाने? हैं, वे ही हैं। देखना है? आज ही अपनी आटोग्राफ बुक में उनसे लिखवाती हूं।

मार्जारनयनी—हां हां! देख ले ना।

उस दिन दुपहर का खाना खाकर लौटते समय वे लोग मेरे घर आयीं। तब एक दूसरी घटना याद आ गयी। उस समय मैं दूसरे मकान में रहता था। मेरे आने का समाचार पाकर हाई स्कूल के हेड मास्टर साहब आये। कहने लगे—स्कूल का सालाना जलसा होनेवाला है, आपको उसमें भाषण देना है, बच्चों को अच्छे-अच्छे उपदेश देना है।

मैंने जवाब दिया—"मुझे भाषण देने का मुहावरा नहीं है। शायद उस समय मैं यहां रहूंगा भी नहीं।"

उन्होंने कहा—"नोटिस में आपका नाम छपवा देंगे। अगर आप यहां रहें तो आइयेगा।"

नोटिस में नाम आ गया। मैं क्या करूं? शांति से बैठकर कुछ लिखने के लिए आया हुआ आदमी। यही सोचता मैं पौधों के बीच खड़ा था। इतने ही में सीकचों के बीच से दिखाई दीं दो आंखें। घुंघराले बालवाली एक लड़की। मैंने सोचा, शायद चमेली या मोगरे के फूल मांगने आयी होगी।

पूछा—"क्या है?"

उसने कहा—"नोटिस में आपका नाम छपा है। हमें भाषण दीजियेगा।

जरूर आइयेगा। आयेंगे न ?"

"उस समय यहां रहा तो आऊंगा।"

उसके बाद रोज ही वह और अन्य लड़कियां भी फाटक के पास आकर कहा करतीं—"जरूर आइयेगा। सुन लिया न ?" लेकिन वार्षिकोत्सव के पहले दिन मैं एकाएक चला गया। पेटी-बिस्तर कुछ नहीं लिया। खाली हाथ। सिर्फ उम्मा को बताया। जलसा खत्म होने के दूसरे दिन लौट आया। उसी दिन उस घुंघराले बालवाली लड़की और दूसरी लड़कियों ने आकर उलाहना दिया—"यह आपने क्या किया ?"

मैंने कहा—"यहां रहूंगा तो आऊंगा—यही तो कहा था ?"

"बड़े भले आदमी हैं आप।"

यह उन दिनों की घटना थी।

आज देहली पार करके आनेवाली लड़कियों में मैंने उस घुंघराले बालवाली लड़की को आंखों से ढूंढ़ा। पर वह नहीं थी। वे सब अब बड़ी हो गयी हैं। स्कूल छोड़कर चली गयी होंगी। ये लड़कियां कितनी जल्दी बड़ी होती हैं।

इन लोगों की आटोग्राफ बुक में लिखने के लिए कलम लेने लगा मैं। फिर सोचा, ठहर जाऊं। जरा प्रतीक्षा करें ये।

लड़कियां आयीं, पर मेरी तरफ नहीं देखा उन्होंने। सीधे जामुन के पेड़ के पास गयीं और उम्मा से कुछ कहकर उनके हाथ में कुछ दिया। उम्मा ने अपनी चुन्नी के कोने से बहुत-सी जामुनें लेकर उनके हाथ में दे दीं। उन्होंने एक-एक खाते हुए कौतुक से पेड़ के ऊपर देखा। गधी लड़कियां···कहीं की। उम्मा की गंदी चुन्नी में लिपटी थीं जो जामुन, वही ये खाती हैं! फिर मैं यहां साफ-सुथरा बैठा हूं, मेरी ओर क्यों नहीं देख सकतीं?

मानो मैं चौंककर जाग पड़ा। बात स्पष्ट हो गयी। सुबह वे लोग जो देख रही थीं सो मेरी तरफ नहीं था!

जब वे चली गयीं, मैंने उम्मा से पूछा—"उन लोगों ने क्या दिया था, उम्मा ?"

उम्मा ने कहा—"एक आना।"

"जामुन उन लड़कियों को बेंच रही थीं ?"

"और नहीं तो क्या ?"

"एक आने में कितनी दीं ?"

"बीस।"

शाबास ! मैंने कितनी बीसी पात्तुम्मा की बकरी को खिलायी हैं ?

उन लड़कियों के मेरी ओर न देखने में जो उपेक्षा स्पष्ट थी उसने मुझे सोचने की प्रेरणा दी। मैंने उम्मा से पूछा—"वह जामुन का पेड़ किसने लगाकर पोसा है ?"

उम्मा ने कहा—"तूने ही तलियावकल से लाकर लगाया था।"

तलियावकल नाम का एक घर हमारे पड़ोस में है। उसमें तोम्मन, मात्तन-कुञ्ञ्, कुंञ्ञप्पन आदि मेरे दोस्त हैं। उसी घर से मैं यह जामुन का पौधा लाया था। मैंने इसे लगा कर इतना बड़ा किया है। इतने पर भी ये गधियां मेरी तरफ देखती तक नहीं ! मैंने खड़े होकर उम्मा से कहा—"वह आना मुझे दो।" उम्मा ने फौरन दे दिया। मैंने जाकर बीड़ियां खरीदीं और मैं दरिया के किनारे जा बैठा। उन लड़कियों की याद करके जिन्होंने मेरी तरफ देखा भी नहीं, मैं धुआं उड़ाता रहा।

इसके बाद रोज लड़कियां मेरे जामुन के पेड़ को देखतीं। उसमें जामुन भरी पड़ी थीं। मैं अपने-आप कहता—"देख लो, गधियो ! मेरा जामुन का पेड़ है। मैंने लगाया था।··· गधियां !"

इनसे बदला कैसे लूं ? कुर्सी पर बैठा रहता राह देखता हुआ। कमरे में जाकर लेटता तक नहीं था। कुछ दिन इसी तरह बीत जाने पर एक दिन वे आयीं। मैंने उठकर अवज्ञा के साथ पूछा—"क्या चाहिए ?"

"छह पैसे की जामुन।"

"लाओ पैसे।" पैसे लेकर जेब में डाले। फिर चुन-चुनकर दस छोटी जामुनें दे दीं।

"यह क्या ? ये तो छोटी हैं। वह बुढ़िया तो बड़ी-बड़ी जामुनें देती थी ?"

"उस बुढ़िया का इस पेड़ पर कोई हक नहीं, इसलिए वह वैसा करती थी।"

"तो फिर एक तो और दो !"

"इस पेड़ को मेहनत के साथ पालने वाले को मंजूर नहीं है"—मैंने एक भी जामुन और नहीं दी।

"कैसे लोग हैं !' कहती हुई वे लालची लड़कियां चली गयीं। कैसी पेटू ! मुझे

नहीं देख सकतीं, मेरे जामुन के पेड़ को बेशरम होकर देखती हैं !

इस तरह मैं जामुन बेचता तो उम्मा आकर पैसे मांगतीं। "क्यों ? आपको क्या हक है इस पेड़ पर ? यह मेरे पसीने का फल है—मेरा पसीना ही है जो जामुन बनकर पेड़ पर लटका हुआ है। आप कितने बरसों से ये फल बेचती आ रही हैं ? वह सब पैसा कहां है ?"

उम्मा हारकर खड़ी हो जातीं। मैं फिर भी छोड़ता नहीं—"और बात-बात पर रुपये मांगती हैं—यह खरीदना है, वह खरीदना है ! हूंअ ! और यह इमली का पेड़ किसने लगाया है ?"

आंगन में एक ओर एक बड़ा इमली का पेड़ था। वह नीचे से ऊपर तक हरी-हरी इमलियों से लदा हुआ था। उम्मा वे इमलियां भी तोड़कर बेचती थीं। वह भी मेरा लगाया हुआ नहीं है ?

उम्मा ने कहा—"वह तो तेरे बाप्पा ने लगाया है। मैंने बहुत पानी डाल के सींचा है उसे।'

"तब इस पर मेरा अधिकार नहीं है।" उम्मा रूठकर चली गयीं। मैंने आनुम्मा को बुलाकर एक प्याला चाय लाने को कहा। आनुम्मा ने पड़ोस के एक लड़के से कहकर दूकान से चाय मंगवा दी। पीकर, बीड़ी जलाकर आराम से बैठ गया।

देखा –वह आ रही है काजल-सी काली एक लड़की। पंद्रह-सोलह साल की होगी। जामुन के लिए ही आयी होगी। तीन पैसे वाली या छह पैसे वाली ? गधी को छोटी ही दूंगा। लेकिन उसने तो पेड़ की ओर देखा ही नहीं। सीधे मेरे पास आकर नमस्ते करके बोली—"मैं आपको जानती हूं। आपकी सब किताबें मैंने पढ़ी हैं। पिताजी से पता चला कि आप आये हुए हैं। इसलिए आयी हूं। मेरी आटोग्राफ बुक में कुछ लिखकर दस्तखत कर दीजिये।"

हां। मेरे मान-संरक्षण के लिए आयी श्यामलसुंदरी ! तुम्हारा मंगल हो !

मैंने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"सुहासिनी।"

"किस दर्जे में पढ़ती हो ?"

"सिक्स्थ में।"

"किसकी लड़की हो ?"

"हमाल माधवन् की लड़की हूं।"

मजदूर की लड़की है ! मजदूरों की जय हो ! मैं कमरे में गया। कलम ले आया। सुहासिनी की उस कापी में लिखा—"सुहासिनी को हार्दिक शुभ कामनाएं !" और दस्तखत करके कापी उसको दे दी। फिर पूछा—"जामुन खाओगी ?"

"खायी हैं मैंने"—उसने जवाब दिया।

एक बड़ा कागज ले आया। फिर पेड़ पर चढ़कर पचास के करीब बड़ी-बड़ी जामुनें चुनकर तोड़ीं और कागज में बांधकर उसे देते हुए कहा—"सुहासिनी ! यह पेड़ मैंने लगाया था।"

"सच ?"

"बिल्कुल सच !"

वह नमस्कार करके चली गयी।

उस रात्रि में एक नयी बात सुनने को मिली—पात्तुम्मा की बकरी आजकल में ही जनने वाली है ! यह नहीं कि वह गाभिन हो गयी, बल्कि जल्दी ही जनेगी। यह नयी बात मुझे अब तक क्यों नहीं मालूम हुई ? ऐसा भी तो नहीं लगता था कि वह गाभिन है। कभी पेट बड़ा दीखता, कभी चिपका हुआ। गाभिन है तो ऐसा क्यों होना चाहिए ? मैंने उम्मा से पूछा।

उम्मा ने कहा—"दिन पूरे हो गये।"

मुझे शंका हुई - "क्या यह सच है ?"

3

तो, पात्तुम्मा की बकरी जनेगी ! अच्छी बात है—जने ! मुझे खुशी हुई।

आनुम्मा मेरा कमरा साफ करके बिस्तर निकाल कर धूप में डाल रही थी, तब मैंने पूछा—"बकरी को कुछ खाने को दिया ?"

उसने बताया कि चावल का मांड दिया है।

"सिर्फ मांड देना काफी नहीं। उसे ताजी घास देना चाहिए। नारियल की खली खरीदकर पानी मिलाकर देना सबसे अच्छा है।"

यह बताने के बाद बहुत-से केले के छिलके और एक छोटा केला बकरी के लिए आनुम्मा के हाथ में दे दिया। आनुम्मा ने बड़े प्यार से मेरी आंखों के सामने ही वह सब बकरी को खिला भी दिया। मगर मुझे लगा कि इन औरतों को कोई गलतफहमी हो गयी है। अथारिटी औरतों का जन्मसिद्ध गुण ही होता है, यह मैं मानता हूं। तो भी···बकरी के गाभिन होने के बारे में उन्हें यहां एक भारी भ्रम हुआ है। बात यह है कि मेरे सामने जो बकरी खड़ी है वह गाभिन नहीं है। उसका पेट बहुत पतला दीखता है। वह पेड़ के नीचे पड़ी हुई जामुन खा रही है। साथ उम्मा भी हैं। वे जामुन इकट्ठी कर रही हैं।

लाल हिम की बड़ी-बड़ी बिंदुओं जैसी जामुन हरे पत्तों के बीच भरी पड़ी हैं। मेरे सामने ही, आंगन के कोने में। मैं बैठा यह देख ही रहा था तो नजर पड़ी—वह आ रही है पात्तुम्मा। आश्चर्य! उसके साथ भी एक बकरी है—और खदीजा तो है ही। लेकिन पात्तुम्मा के साथ आने वाली बकरी गाभिन है।

मैंने आनुम्मा से पूछा—"यह कौन-सी बकरी है?"

आनुम्मा ने कहा—"यह मेरी है। इत्तात्ता[1] ने दी है।"

तब तो आनुम्मा की भी एक बकरी है! वह मेरे ही घर में एकदम मेरे पास ही रहती है। फिर भी मुझे पता नहीं था। न दोनों को अलग-अलग पहचान सका। दोनों भूरे रंग की हैं। मैंने जरा ध्यान से देखा—पात्तुम्मा की बकरी की आंखों के चारों ओर काले रंग का घेरा है।

पात्तुम्मा की बकरी आते ही कमरे के भीतर घुस गयी। मैंने पात्तुम्मा से पूछा—"क्यों पात्तुम्मा, बकरी और तुम इतनी देर से आयीं?"

पात्तुम्मा ने बात साफ की—कोच्चुण्णी जितनी घास खरीद देता है वह रात को खाने के लिए होती है। पूरी नहीं पड़ती। इसलिए खेत वगैरह में जाकर घास काट कर दी।

पात्तुम्मा पिछवाड़े जाकर बहुओं और बहन से नाराज होने लगी। उसकी बकरी के लिए जो चावल का मांड रखा था वह कम था।

[1] इत्तात्ता—बड़ी बहन, मुसलमानों की बोली में।

"आनुम्मा ने अपनी बकरी को दे दिया तो तुम लोगों को जरा परवाह नहीं करनी चाहिए थी ?"

ननद-भौजइयों की एक लड़ाई सुनने की मुझे बहुत इच्छा थी। सास-बहू की लड़ाइयां कभी सुनने को नहीं मिलीं। हमेशा उम्मा की ही आवाज सुनायी देती रही। सबको खूब डांटती हैं।

सो अब आनुम्मा की आवाज सुनायी दी—"मैंने तो अपनी बकरी को थोड़ा-सा ही मांड़ दिया है। थोड़ा हम लोगों ने पिया। जो बचा, सब रखा है।"

मैंने यह नहीं बताया कि जो केले के छिलके मैंने दिये थे वे आनुम्मा की बकरी के ही पेट में गये।

"बस करो, अब कुछ कहने की जरूरत नहीं," पात्तुम्मा ने कहा—"उम्मा भी मुझे नहीं चाहतीं।"

"देख री !" उम्मा ने कहा—"कसावा उबालकर खाने के बाद थोड़ा-सा मांड तो पीना ही पड़ता है। मगर हम लोगों ने बहुत थोड़ा-थोड़ा ही पिया था। बाकी सारा तेरी बकरी के लिए रख छोड़ा था।"

कसावा (टापिओका) खाने पर चावल का मांड पीना पड़ता है—ऐसा उम्मा ने कहा। पता लगाने पर इसके पीछे का दयनीय रहस्य समझ में आया। उम्मा, आनुम्मा, कुञ्ञानुम्मा, ऐशोम्मा—इनमें से कोई भी भात नहीं खातीं। अर्थात, भात इनको मिलता ही नहीं। वह पुरुषों और बच्चों के लिए ही है। बाकी लोग इसी कसावे के आधार पर जिंदा रहते हैं। इस कंद को सुखाकर रख लिया जाता है। ग्यारह बजे के लगभग इसी को कूटकर पूट्टु बनाकर खाया जाता है। एक चुटकी चाय की पत्ती गरम पानी में डालकर बिना दूध और चीनी के सब स्त्रियां पी लेती हैं। (यह चाय की पत्ती भी मामूली तौर पर सुलेमान देता होगा)। और फिर काम में लग जाती हैं। सब को बहुत काम होता है। मर्द खाने के समय पर ही आते हैं। मुसीबत सारी भोगती हैं औरतें। यह केवल मेरे ही घर की बात नहीं है। मध्य वर्ग के ज्यादातर घरों में यही हालत है। स्त्रियां इतनी बड़ी सेवा करती रहती हैं, पर पुरुष इसको जानते क्यों नहीं ?

अब्दुल खादर की बीवी कुञ्ञानुम्मा की आवाज सुनायी दी–"पात्तुम्मात्तात्ता[1],

[1] केरल के मुसलमानों में बड़ी बहन को 'इत्तात्ता' कहा जाता है। इसीको मिलाकर 'पात्तुम्मात्तात्ता' संबोधन बनाया गया है। देखिए पृ. 29 भी।

बकरी जनने के बाद हमको न भूल जाना। सुबैदा को थोड़ा दूध देना।"

हनीफा की बीबी ऐशोम्मा ने कहा—"क्या दूध मेरे रषीद के गले के नीचे नहीं उतरेगा ?"

सुलेमान की पत्नी आनुम्मा ने कहा—"सैदु मुहम्मद को भी दूध पीने से कोई नुकसान न होगा।"

आनुम्मा स्कूल में थोड़ा-सा पढ़ी है। पात्तुम्मा बड़ी है, तो भी वह शिक्षा-दीक्षा नहीं पायी है। इसलिए पात्तुम्मा के मुंह से निकला—"बस बस ! तुम्हारी चमड़ी निकाल लेने की आदत !"

थोड़ी देर बाद मैं अपने कमरे में गया तो क्या देखता हूं कि पात्तुम्मा की बकरी खड़ी मेरी पेटी के ऊपर रखे बड़े केले खा रही है। वह पात्तुम्मा की ही बकरी है, इसमें कोई शक नहीं। पूरब के दरवाजे से भीतर घुसी है। दरवाजा बंद करना आनुम्मा भूल गयी थी।

मैं चिल्लाया—"आनुम्मा, पात्तुम्मा ! दौड़कर आओ। तुम लोगों की बकरी ये बड़े केले खा रही है।"

आनुम्मा और पात्तुम्मा भागकर आयीं। आनुम्मा खुश हो गयी—उसने कहा, "यह इत्तात्ता की बकरी है।"

"जाने दो भाईजान !" पात्तुम्मा बीच-बचाव करने के लहजे में बोली—"मैं दो केले खरीद दूंगी। भूख लगी होगी उसे।"

आनुम्मा ने कहा —"यह चाहे जितना खाये, इसकी भूख मिटती ही नहीं। मेरी बकरी की घास भी यह चोरी करके खा जाती है।"

पात्तुम्मा को गुस्सा आ गया—"बस बस ! तेरी बकरी की घास !"

मैंने कहा—"कोई बात नहीं। तुम सब बच्चों को बकरी का दूध पिलाया करना।"

"यह कैसे हो सकेगा, भाईजान ? कितने-कितने जरूरी काम पड़े हैं ! दूध बेचकर ही तो हमारे घर का दरवाजा सुधरवाना है।"

क्या करें ? पात्तुम्मा, कोच्चुण्णी और खदीजा जहां रहते हैं उस मकान का दरवाजा रस्सी से बांध रखा गया है। उसे ठीक करवा देना है। घर की औरतों को मेरे जाने के पहले कम से कम एक बार पेट भर खाना खिलाना है। इस सबके लिए पैसा कहां से आये ? मेरे पास एक पैसा भी नहीं। जो-कुछ था, सब को

बांट दिया। 'बांट दिया' कहना शिष्टाचार के लिए है। सच बात यह है कि सबने मिलकर मुझसे छीन लिया। और मुझे इस लाचारी में बैठा रखा है।

याद करके गुस्सा आता है। मैंने क्या-क्या नहीं दिया ? बर्तन खरीद के दिये, गिलास खरीद दिये, औरतों को सिर ढकने के लिए तट्टम्[1] खरीद दिये। इस सबके बावजूद सबका व्यवहार ऐसा है मानो कुछ किया ही नहीं !

क्रोध मेरी नाक की नोक पर आ गया है। कोई हिले तो मैं डांटने लगता हूं। अबू को, हनीफा को, अब्दुल खादर को—सबको डांटता हूं। हनीफा, सुलेमान, अब्दुल खादर—सबके बच्चों को मारता हूं। सिर्फ पात्तुम्मा की लड़की खदीजा को नहीं मारता, क्यों कि वह बाहर कहीं दिखाई नहीं देती। डांटने में घर की सभी औरतों को शामिल कर लेता हूं—खासकर छोटे भाइयों की पत्नियों को। मेरी आवाज ऊंची होती तो घर शांत हो जाता। तब मैं गौरव से बैठता।

पात्तुम्मा की बकरी आंगन में खड़ी कटहल के सूखे पत्ते खा रही है। खाये, खूब खाकर पेट भरे। जनने पर दूध बहुत होगा। सुबैदा, रषीद, खदीजा, अबी, सैदु मुहम्मद, पात्तुक्कुट्टी—सब थोड़ा-थोड़ा दूध पियें तो अच्छा है। मेरे घर में कोई भी दूध, घी आदि नहीं खाता। मैं घी खाता हूं, दूध भी पीता हूं। मेरी बात यहां कुछ स्पेशल है। हां, दूध और घी की बात कही तो बीस-पचीस साल पहले की कुछ घटनाएं याद आ गयी हैं।

उस समय मैं, अब्दुल खादर, हनीफा और पात्तुम्मा बच्चे थे। आनुम्मा शायद पैदा नहीं हुई थी। अबू तो था ही नहीं।

घर में गाय थी। दूध-दही सुलभ था। बाप्पा उन दिनों लकड़ी के व्यापार के साथ नाव का भी व्यापार करते थे। पहाड़ों से लकड़ियां कटवाकर उसी जगह पर नावें बनवाते थे। उन्हें एक साथ बांधकर नदी द्वारा घाट पर लेजाकर अच्छे दामों थोक में बेच दिया करते थे।

उन दिनों घर में हमेशा घी होता था—पीले रंग का रेत के दानों जैसा, सुगंधी, शुद्ध गाय का घी। कांच की भरनी में भरा रखा रहता था। कुट्टयत्तूर पहाड़ियों में औषधियों जैसी गुणकारी, ताजी-ताजी घास खाकर पली हुई गायों का घी। घी की भरनी के पास ही रहती थी चीनी की भरनी। दोनों कोने के

[1]केरल में मुसलमान स्त्रियां विशेष प्रकार की पोशाक पहनती हैं। वे जिस रंगीन या कढ़ी हुई चुन्नी से सिर ढांकती हैं उसे 'तट्टम्' कहा जाता है।

तख्त पर रखी रहती थीं। चावल में और नाश्ते में सब मिलाकर भरपूर घी खाया करते थे हम लोग।

बाप्पा के हाथ से मैं बहुत मार खाया करता था। अब्दुल खादर को मार नहीं पड़ती थी। वह सौभाग्य केवल मुझे ही सुलभ था। कभी-कभी कारण होने पर। कभी बिना कारण ही। पिता मारते थे सो तो मारते ही थे, मां भी मारा करती थीं। उम्मा ने मुझे मारा है। चमचे की डंडी से मार-मारकर मुझे रसोई से बाहर कर देतीं। सदा कुछ खाने की इच्छा होती रहती थी, इसलिए रसोई में जाकर बर्तनों में हाथ डालता और जो कुछ भी मिल जाता वही खा लेता था। अब्दुल खादर भी ऐसा ही किया करता था, पर उस बात पर कोई विश्वास नहीं करता था। चोरी वह करे तो भी मार मुझे ही खानी पड़ती थी।

एक दिन नाश्ते और दुपहर के भोजन के बीच का शुभ मुहूर्त आया। थोड़ी-थोड़ी भूख लगी थी। छोटी-मोटी कोई चीज लेकर खा लेने का अच्छा मौका था। रसोई की ओर मैं गया। वहां उम्मा थीं। नौकरानी भी थी। उसका नाम था—'नङ्ङेली'। वह भी मुझे मारती थी। मार-मार के भगा दिया करती थी।

मैं छोटा मालिक था। नौकरानी छोटे मालिक को मारे यह उचित नहीं। पर यह न्याय हमारे घर में नहीं चलता था। उम्मा से शिकायत करते तो यही उत्तर मिलता कि अच्छा हुआ, तूने वर्तन में हाथ डालके चीज निकालकर खायी क्यों? इतना ही नहीं, कहते हैं कि मैंने इस नङ्ङेली का दूध पिया है। खैर। फिर मैंने सोचा, एक कच्चा आम ही दांत से काटकर खा लूंगा, लेकिन वह भी मिलने का उपाय नहीं। नङ्ङेली कहती—"भूखा ही रह थोड़ी देर। अभी खाना देंगे। या, मार खाना है?"

"हेंएए!" चुपचाप वहां से निकल चला। घूमता-घूमता कमरे के अंदर पहुंचा। वहां मानो एक निधि ही मिल गयी। घी और शक्कर की भरनियां पास-पास रखी थीं। दोनों मिला लें तो कुछ अच्छी चीज बन जायगी। देर नहीं की। सबकी नजर बचाकर मैंने एक चीनी का कटोरा लिया और बाप्पा के सोने के कमरे में पहुंचा। घी की भरनी धीरे से उठाकर उनके पलंग पर रखी। ढक्कन खोला। अपने पाक हाथों से घी निकालकर आधा कटोरा भर लिया। फिर भरनी वापस उसके स्थान पर रखी। शक्कर भी उसी तरह संभालकर निकाली और कटोरा भर लिया। दोनों भरनियां कोने के तख्त पर जैसी की तैसी रख दी थीं। किसी

को भी सुराग नहीं मिल सकता था। बाप्पा जैसे घी-शक्कर निकालने के बाद चम्मच से सतह बराबर कर दिया करते थे, वैसे ही मैंने भी हाथ से बराबर कर दी। फिर उसी पलंग पर बैठकर घी-शक्कर मिलाकर थोड़ा-थोड़ा मुंह में डाला और कुर-कुर करके खाने लगा। दानेवाली शक्कर थी। घी में पिघली नहीं। मैं स्वाद से खाता रहा। तब, धीमे—बहुत धीमे स्वर में एक प्रश्न! मैं चौंक पड़ा। प्रश्नकर्ता था अब्दुल खादर। वह पास ही खड़ा था। कब, कैसे कमरे में आया, मुझे पता नहीं चला। उसने धीरे से पूछा—"भाईजान, क्या खा रहे हो?"

मैंने भी वैसे ही उत्तर दिया—"एक दवा।"

"मैं आपके पीछे ही था। मैंने सब देख लिया है। मुझे भी दो, नहीं तो सबको बता दूंगा।"

बड़ा रहस्य प्रकट करने जैसे मैंने कहा—"तू मेरा छोटा भाई नहीं है?"

"तो मुझे भी दो!" मैंने उसे कटोरा दे दिया। उसे चाट-चाटकर उसी ने साफ किया।

"आगे मैं नहीं लूंगा," मैंने कहा—"तू भी नहीं लेना।"

इस करार को एक-दूसरे से मंजूर कराके हम दोनों बाहर आये। कटोरा जहां था वहीं ले जाकर रख दिया और हम दोनों इस तरह चले गये जैसे दुनिया में कुछ हुआ ही नहीं।

उसके बाद घी या शक्कर मैंने कभी नहीं ली। यह शुद्ध सत्य है। घी का गुण वगैरह मुझे मालूम ही नहीं था। खाने को कुछ नहीं मिला, इसलिए सामने जो दिख गया वह खा लिया। बस, इतनी ही बात थी। खाने के लिए घर में बहुत-सी चीजें थीं। पका कटहल, पके आम, तला हुआ गोश्त भरनी भर के—इन सब पर ध्यान केंद्रित करके मैं चल रहा था। दिन बीतते गये। अब बेकार ही मुझे मार पड़ने लगी। और अब्दुल खादर तो था बहुत बीमार!

मेरी पिटाई का कारण? कोई छिपाकर घी खाता है। पलंग पर और भरनी के ऊपर निशान पड़े हैं। मैं पिटता ही गया। मजेदार थी अब्दुल खादर की बीमारी। वह गुब्बारा जैसा फूला जा रहा था। हमेशा पानी ही पानी पीकर जीता! कुछ भी खा नहीं सकता था!

"बेटे को कोई बड़ी बीमारी है"—नङ्ङेली ने कहा। उम्मा ने भी हामी

भर दी। बाप्पा 'कणियान्'[1] को बुलाने गये। उन दिनों कणियान् ही सबसे बड़ा चिकित्सक होता था। उम्मा अब्दुल खादर को गोद में लेकर कहतीं—"हाय! अल्लाह! मेरे बेटे को क्या हो गया?"

नङ्ङेली कहती—"हाय! दैया! मेरे सोने जैसे बेटे को रोग-दोख न हो!"

अब्दुल खादर बिना किसी चिंता के, बीमार बनकर, मोटा होकर सबका लाड़ला बना बैठा था।

मैंने उसके मुख पर आंखें गड़ाकर देखा और यह भाव भी जाहिर किया—"वाह रे चोर! वह घी सारा चुराकर खाता है और मोटा होता जाता है!"

पर उसके तौर-तरीके में मेरे इस संकेत से कोई फर्क नहीं पड़ा—उसपर कोई असर ही नहीं हुआ। कणियान् आया। दूसरा चिकित्सक वर 'वेलन'[2] भी आया। फिर एक मुस्लिम फकीर 'मुस्लियार'[3] को बुलाया गया।

दिन बीतते गये। घी कम होता गया। मैं मार भी बराबर खाता गया। अब्दुल खादर मोटा होता गया। बीमार तो था ही! वह दवा नहीं खाता था। छिपाकर फेंक देता था। कभी-कभी थोड़ा-सा चावल खा लेता था। बीमार होने के कारण सब उसका लाड़ करते थे। परंतु उसे कोई कमजोरी नहीं, कुछ नहीं!

मैं जानता था कि रोज़ वह घी-शक्कर खाता है। पर किससे कहूं? कोई माननेवाला था ही नहीं! एक दिन मैंने उसे तला हुआ गोश्त दिया। वह अलमारी से मैंने चुरा लिया था। उसने वह खा लिया। तब मैंने उससे कहा—"देख! तू मेरा छोटा भाई है न? सच बोल, तू ऐसा फूलता क्यों जा रहा है? घी-शक्कर खाने से ही न?"

"जाओ भाईजान, चुपचाप चले जाओ। मैं बीमार हूं।"

इसकी यह चोरी कैसे पकड़ाई जाये? कहने से कोई मानेगा नहीं। तो भी मैंने उम्मा से कहा। नङ्ङेली से भी कहा। घी-शक्कर खाके खत्म करने वाला चोर वह है!

---

[1] केरल में ज्योतिषी को 'कणियान्' कहते हैं। गणित करनेवाले के अर्थ में 'गणकन्'। इसका अपभ्रंश—'कणियान्'। यह बड़ा चिकित्सक भी माना जाता है।

[2] 'वेलन'—एक प्रकार का मांत्रिक। शरीर में भूत आदि की बाधा होने पर यह मंत्र जपकर, कुछ विधि-विधान, क्रिया आदि करके उसका निवारण करता है। यह निम्न जाति का होता है। यह भी गांवों में इलाज का अधिकारी माना जाता है।

[3] मुस्लियार—मंत्र पढ़कर, फूंक मारकर रोगों को दूर करनेवाला मुस्लिम फकीर। यह धर्मगुरु का काम भी करता है।

जैसा मैंने सोचा था, वैसा ही हुआ। किसी ने नहीं माना। पर मेरे दिल की सचाई के कारण एक घटना हो गयी। जुम्मा का दिन था। बाप्पा नमाज पढ़ने मसजिद गये थे। उम्मा कई औरतों के साथ पड़ोस के घर में बैठी गपशप कर रही थीं। उन्होंने अब्दुल खादर के गैबी रोग के बारे में भी कहा। यह सब सुनने के बाद मैं घर आया। नङ्ङेली सो रही थी। रसोई में घुसकर कुछ खोज-बीन की। जो-कुछ हाथ लगा वह खा भी लिया। वहां से बरामदे की तरफ आ रहा था तो बाप्पा के कमरे से कुछ आवाज सुनायी दी—कुछ हिलती जैसी छाया दिखायी दी। मैंने छिपकर देखा। पलंग के नीचे से दो पैर दिखायी पड़ रहे थे। एक पैर दुबला-पतला था।

अब्दुल खादर—घी-शक्कर खा रहा है!

मैं बहुत धीरे बाहर निकला और उम्मा के पास जाकर बोला—"अब्दुल खादर की बीमारी देखना है? तो दौड़ के आओ।"

सबको बुलाकर दरवाजे पर खड़ा किया और किवाड़ खोल दिये। अब्दुल खादर चीनी के कटोरे में घी-शक्कर मिलाकर खाता हुआ पलंग के नीचे बैठा है। चोर को रंगे हाथ पकड़कर सामने लाया। उम्मा ने उसे खूब-खूब पीटा। शोर सुनकर नङ्ङेली जागी। उसने भी पीटा। मैं वह सुंदर दृश्य देखता खड़ा रहा। बाप्पा जब लौटकर आये, उन्होंने भी उसकी मरम्मत की।

यह सब हो जाने के बाद अकेले में मिला तो उसने कहा—"मैं आपका छोटा भाई हूं न? आपने मुझे क्यों पकड़वा दिया?"

"चोर कहीं का! वज्रचोर! तेरे कारण मैंने कितनी मार खायी? तब तूने कभी सोचा था कि मैं तेरा बड़ा भाई हूं?···चोर!"

यह सब याद करके मुझे हंसी आ गयी। उसी समय उम्मा उधर आ निकलीं। बड़ी बी पूछने लगीं—"क्यों रे, अकेले बैठे-बैठे हंस रहा है?"

मैंने कहा—"एक बात याद आ गयी, जिससे हंसी आयी। बचपन में अब्दुल खादर घी-शक्कर खाया करता था न?"

"तू अबतक भूला नहीं?"

"नहीं।"

"तेरे पास पैसा हो तो मुझे पांच रुपये चाहिए। पात्तुम्मा की बकरी ने चावल बनानेवाला मटका तोड़ दिया है।"

"भाईजान, वह आनुम्मा की बकरी होगी,"—पात्तुम्मा ने कहा।

आनुम्मा दौड़ के आयी—"मेरी बकरी नहीं है। इत्तात्ता की ही है।"

पात्तुम्मा ने कहा—"बस कर री! बस कर! भाईजान बैठे हैं, जरा अदब से रह। कैसे जाना तूने कि वह मेरी बकरी है, जरा बता दो?"

आनुम्मा ने कहा—"भाईजान को बताने के लिए ही मैं कह रही हूं। आपकी बकरी के यहां पहुंचते ही मैं अपनी बकरी को भीतर ले जाके बांध लेती हूं। आपकी बकरी मेरी बकरी की घास चुराकर खा जाती है। हमारा कसावा का पूठ्टु चुरा कर खाती है, हमारी बिना दूध-शक्कर की चाय पी जाती है। बच्चों को भी खाने को कुछ नहीं मिलता। सब आपकी बकरी खा जाती है।"

पात्तुम्मा ने टोका—"बस भी कर! तेरी एक बकरी—चोरी न करनेवाली! कहां से आयी तेरी बकरी?"

आनुम्मा ने मंजूर किया—"वह तो इत्तात्ता ने दी थी।"

"देख री! इस दुनिया में कितनी बड़ी बहनें अपनी छोटी बहनों को बकरी देती हैं, कह तो सही?"

"ओह! कितनी ही बड़ी बहनें छोटी बहनों को हाथी देती हैं। केंचुए जैसी एक बकरी की क्या बात करती है आप?"

पात्तुम्मा के ऊपर भूत सवार हो गया। "भाग्य मना कि भाईजान बैठे हैं, नहीं तो मैं तुझे मजा चखा देती। सुन री! ऐसी बात मत कर, जो अल्लाताला के सामने ठीक न पड़े। मेरे पास दो बकरियां थीं। उनमें से एक अपनी छोटी बहन के नाते तुझे दे दी। कम से कम इतना तो याद कर।"

पात्तुम्मा फिर मेरे पासआयी और उसने धीरे से पूछा—"खदीजा के कान की बात भूल गये?"

मैंने भी वैसे ही जवाब दिया—"नहीं।"

पात्तुम्मा ने उपदेश दिया—"कोई जान न पाये।"

तुरंत आनुम्मा ने मेरे पास आकर पूछा—"इतात्ता चुपके क्या बोल रही थीं, भाईजान?"

पात्तुम्मा दौड़कर आयी और बोल उठी—"कुछ नहीं बोल रही थी।"

"नहीं," आनुम्मा ने कहा—"मैं समझ गयी। हमसे छिपाकर इत्तात्ता को कुछ देने को कहा है। कहिये, भाईजान, क्या देने को कहा है?"

इसी समय पिछवाड़े से दो अशरीरी वाणियां सुनायी दीं। अब्दुल खादर की बीवी कुञ्आनुम्मा और हनीफा की श्रीमती ऐशोम्मा की आवाजें थीं—"कोई गहने-वहने हैं तो हमारे बच्चों को भी चाहिए।"

मैं नहीं जानता, यह चमक उनके मन में कैसे हुई ? शायद औरतों को ऐसा होता होगा। पर यह सुनते ही पात्तुम्मा को फिर गुस्सा हो आया। उसने कहा—"खदीजा, बुला अपनी बकरी को। हम चले जायेंगे। यहां सब ऐसे ही शैतान बसते हैं। हमको अब इस घर में पैर नहीं रखना।"

आनुम्मा समझ गयी। बोली—"ओ रब ! वही बात है। सोने के गहने ही हैं। क्या है, भाईजान ? बताइये।"

मैंने कहा—अर्थात घोषणा की —"सब जान लें। खदीजा को मैंने दो कान के फूल बना देने को कहा है। बनवाऊंगा भी। क्या किसी को उज्र है ?"

आनुम्मा ने कहा—"भाईजान, मुझे भी चाहिए दो फूल।"

"बस भी कर अब यह अपनी डाह ! अपने नये मकान में रहने जायगी तब सब बर्तन खरीद देने को तूने भाईजान से नहीं कहा है ? और क्या उन्होंने वादा नहीं किया है ? मुझे सब मालूम है, जानती हो छोटी बहनजी ?"

यह राज पात्तुम्मा को कैसे मालूम हुआ ?

4

शोरगुल सुनकर मैं रसोई की तरफ गया तो देखा, उम्मा की अध्यक्षता में सब औरतें परेशान होकर खड़ी हैं। बीच में है पात्तुम्मा की बकरी। उसका सिर नहीं। कहने का मतलब यह कि कुछ खाने के लोभ से उसने किसी तरह एक मटके के अंदर सिर डाल दिया। अब निकाल नहीं पाती। सो, वह मटके सहित खड़ी है —खड़ी है, यानी औरतों ने उसे पकड़ रखा है। मटका कैसे निकालें, यही समस्या थी।

पात्तुम्मा की बकरी ने जो शरारत की वह मैंने देख ली, इससे पात्तुम्मा को जरा बेइज्जती मालूम हुई। उसने बचाव करते हुए कहा—"यह ऐसा कुछ करने-वाली नहीं है, भाईजान !"

मैंने एक छोटा-सा पत्थर लेकर मटका फोड़ डाला और बकरी को मुक्त कर दिया।

"वाह ! यह तो हम भी जानते थे ! " उम्मा ने कहा।

"क्या अक्ल है ? अच्छा-सा मटका फोड़ दिया।" किसी ने अपना ख्याल जाहिर किया।

मैं अपमानित होकर वापस बरामदे में आकर बैठ गया। वहां अब्दुल खादर की बड़ी लड़की पात्तुक्कुट्टी भागती हुई आयी। उसके मुंह में कुछ दांत गायब थे। उसने कहा—"अबी ने हमको मारा है।" तबतक अबी भी आ पहुंचा—"बड़ी बी ने म्बी को भी मारा।" मैंने आगे लड़ाई न करने की चेतावनी देकर दोनों को भेज दिया। इतने में आ गया सैंदु मुहम्मद एक फरियाद लेकर—"मामूजान ! " उसने कहा—"लैला मुझे 'उल्लाटत्तिपारु' कहती है।"

गजब हो गया। एक लड़की एक लड़के को फिर से 'उल्लाटत्तिपारु' कहकर पुकारती है।

"लैला ! " मैंने बुलाया। लैला आयी। आंखें भरी हुई थीं। आते ही बोली—"चचाजान को नहीं ले जायेंगे।"

"मत ले जाना। ला रे, एक बेंत ले आ।"

सैंदु मुहम्मद इमली की एक पतली, मजबूत टहनी तोड़ लाया। लैला को उस टहनी से डराया और आगे किसी दूसरे को भी उस नाम से न पुकारने की ताकीद देकर रुखसत किया।

कई मुर्गियां जोरों से चीखती-चिल्लाती हुई, उड़ती-दौड़ती मेरे ऊपर आ पड़ीं। पीछे-पीछे दौड़ती आ रही थी पात्तुम्मा की बकरी भी। कोई खास बात नहीं थी। पात्तुम्मा की बकरी ने सिर्फ एक और चावल पकाने का मटका तोड़ दिया था। आनुम्मा और ऐशोम्मा—दोनों की आवाज। उम्मा की डांट। बच्चों की हंसी। पात्तुम्मा की फरियाद। और···पात्तुम्मा की बकरी खड़ी थी कटहल के पेड़ के नीचे, जैसे उसको कुछ पता ही नहीं।

करीब चार बजे शाम को मैं निकल पड़ा जरा घूमने के लिए। बाजार के पास

पहुंचा। वहां एक अचंभे की बात दिखायी दी।

एक छोटी-सी टोकरी भर जामुन सामने रखे बहुत-से लोगों के बीच बैठे हैं अबी और पात्तुक्कुट्टी! हजारों हाथियों के बीच दो चूहे के बच्चों जैसे। दोनों जामुन बेच रहे हैं। मुखिया तो अबी है ही।

"म्बी के एकात के तीन पैंसे। म्बी के दो आत और एक के दो तीन पैंसे।"

अर्थात्, तीन पैसों की पांच और छह पैसों की ग्यारह जामुनें। अबी के हाथ में पांच अंगुलियां हैं न? मैं बिक्री की इस रीति को देखता खड़ा रहा। उन्होंने छह आनों की जामुन बेचीं। मैंने वे छह आने अपने हाथ में ले लिये।

उस रात उम्मा को मैंने आठ आने दिये। उम्मा खुश हुई। रात को खाना खाते समय मैंने वहां बैठे पिताओं से बच्चों को पालने के तरीके और उनकी माताओं को पेटभर खाना देने की जरूरत के बारे में बात की। बच्चों को सफाई सिखाना कितना जरूरी है, इस बारे में एक भाषण दिया। घर और आसपास की जगह साफ रखने की जरूरत समझायी।

सब बातों के उत्तर में हनीफा ने कहा—"मैं फौज में चला जाऊंगा।"

अबू ने कहा—"भाईजान, एक काम करें, बस! थोड़ा पैसा खर्च करें। इस घर की छत बदलकर खपरैल की बनवाना है। आपके आने से आंगन तो साफ हो ही गया।"

उस सफाई पर पैसा खर्च किया था मैंने। पत्थर मंगवाकर आंगन को पक्का कराया था।

"यह सब रहने दो," अब्दुल खादर ने कहा—"सब ठीक हो जायगा। पात्तुम्मा की बकरी जन भर जाये।"

और कुछ दिन बीत गये।

हुम्! पात्तुम्मा की बकरी ने प्रसव किया।

दुपहर का शुभ मुहूर्त! पानी थोड़ा-थोड़ा झिर रहा था। समाचार पाया तो मुझे घबराहट हुई। कोई भी मुसीबत आ सकती है। प्रसूति के समय मृत्यु होने की कई घटनाएं मुझे याद आयीं। मन बहुत व्याकुल हुआ। उम्मा को सैंकड़ों बार बुलाया।

"उम्मा! उसके पास ही खड़ी रहो!" मैंने आरजू की। उम्मा ने कुछ नहीं कहा। मेरी परेशानी बढ़ गयी—क्या होगा? एक बार जाके देखूं? पर जाने की

हिम्मत नहीं। तो भी जरा झांककर देखा। सिर्फ बकरी नहीं दिखायी दी, और सब लोग हाजिर थे—भीड़ लगाये। उम्मा, आनुम्मा, ऐशोम्मा, पात्तुक्कुट्टी, अबी, अरीफा, सैदु मुहम्मद, रषीद, सुबैदा—इनके अलावा पड़ोस की सब औरतें। मानो कोई बड़ा उत्सव हो। सब खुश ही खुश।

किसी को कोई चिंता क्यों नहीं होती? मैंने उम्मा को बुलाकर पूछा—"पात्तुम्मा को खबर दे दी?"

उस समय वहां रहने की खास हकदार तो पात्तुम्मा ही थी। लेकिन उसको बुलाने कोई नहीं भेजा गया। उम्मा और दूसरी औरतों को कोई परवाह नहीं। यह देखकर मुझे ख्याल आया—इनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। ये सब कई-कई बार प्रसव कर चुकी हैं। उम्मा के तो कई बच्चे हैं। उनकी लड़कियां—पात्तुम्मा और आनुम्मा भी कई-कई बच्चों की मां बन चुकी हैं। उम्मा की बहुएं भी ये सब अनुभव ले चुकी हैं। इसलिए प्रसव आदि इनके लिए कोई खास बात है ही नहीं। कहीं भी बच्चा होने की बात सुनती हैं तो यों ही पूछ लेती हैं—"लड़का है या लड़की?" बस?

लेकिन मुझे तो यह अनुभव नहीं था? इसलिए मैं जरा घबरा गया।

पश्चिम की तरफ बरामदे में मैं अकेला बैठा था। कोई खबर नहीं मिल रही थी। वहां क्या हो रहा होगा? बहुत-सी बीड़ियां मैंने फूंक दीं। इधर से उधर, उधर से इधर घूमता रहा। ऐसे ही मौके पर अबी और पात्तुक्कुट्टी मेरी ओर आये। अबी डींग मार रहा था—"म्बी ने पेले देका!"

पात्तुक्कुट्टी ने कहा—"नहीं अबी, मैंने पहले देखा था।" तब तक लैला और सैदु मुहम्मद आ गये। सैदु मुहम्मद ने कहा—"पहले देखा मैंने।"

लैला सुनकर चिल्लायी—"भाईजान को नहीं ले जायेंगे। मैं थी, जिसने पहले देखा।"

इन सब छोटे शैतानों ने क्या देखा पहले?

मैंने अबी से पूछा—"तूने क्या पहले देखा रे?"

अबी ने बड़े तपाक के साथ कहा—"पूरा-पूरा जनना देखा। पहले म्बी ने ही देखा।"

"ओह! बकरी जन गयी?" मैंने पूछा।

पात्तुक्कुट्टी ने फौरन जवाब दिया—"हां-हां! जन गयी। उसका जनना पहले-

पहल मैंने ही पूरा देखा।"

"उफ !" तो प्रसव हो गया। कोई मुसीबत नहीं आयी। मुझे तसल्ली हुई। जाकर देखा। नीचे के बरामदे में जच्चा और बच्चा दोनों पड़े हैं। सफेद सुंदर बच्चा! वह इस भारी दुनिया और उसके जंजाल को लापरवाही से देखता पड़ा है।

उस मां को गरम पानी से नहलाने, दूध पिलाने आदि को कहने की इच्छा हुई। लेकिन दूध कहां से आयेगा ? गरम पानी तो हो सकता है। मगर मैं कुछ कहूं तो इन औरतों के लिए तमाशा बन जायगा। फिर भी मैंने उम्मा से पूछा—"उसको कुछ खाने को दिया।

"कुछ नहीं दिया। थोड़ी देर बाद कुछ खास पत्ते देंगे। यही होता है।"

"उस बच्चे को चटाई या कुछ और बिछाकर लिटाओ," मैंने कहा—"ठंडी जमीन पर लेटा है।"

मालूम नहीं उन्होंने क्या किया। परंतु मैंने जल्दी से एक बड़ा केला लाकर बकरी को दे दिया। उसने मानो कृतज्ञता दिखाते हुए वह खा लिया।

सब औरतें मेरी ओर देख रही थीं, मानो पूछ रही हों—"यह क्या बात ?" सिर्फ उम्मा बैठी-बैठी मुसकरा रही थीं।

शाम होने पर पात्तुम्मा, खदीजा और कोच्चुण्णी आये। बकरी जनने का समाचार पाकर उन्होंने कुछ कहा भी नहीं।

सोने के समय मैंने पूछा—"बकरी के बच्चे को कहां रखा है ?"

किसी ने उत्तर दिया—"रसोई में।"

"तो चूल्हे में आग नहीं रह गयी होगी ?"

उम्मा ने जवाब दिया—"टोकरी से ढक दिया है।"

टोकरी से ढंक दिया है !

"आनुम्मा !" मैंने चिल्लाकर पुकारा—"उसका दम नहीं घुट जायगा ! तुम लोग अपने किसी के बच्चे को टोकरी से ढंककर रख सकती हो ?"

"तो फिर उसे क्या करें ?" बस, यही उत्तर मिला। किसने दिया जानता नहीं मैं चुपचाप लेट गया। इन औरतों के बीच, जिनमें सभी के कई-कई बच्चे हैं, मेरा कुछ कहना जरा यों ही है। मेरे पीछे उसी को दुहराकर वे हंसेंगी। मेरी शादी नहीं हुई, इसलिए ऐसी बात पर मुझे कुछ नहीं कहना चाहिए, जिसके बारे में कुछ

जानकारी नहीं है। सो, मैं चादर ओढ़कर, आंखें मूंदकर लेट गया।

दूसरे दिन सुबह नहा-धोकर और सुबह के कामों से निपटकर बैठा था। आनुम्मा से पूछा—"उसको कुछ दिया?"

'उसको' कहने से आनुम्मा समझ गयी कि पात्तुम्मा की बकरी के बारे में ही पूछा जा रहा है। उसने बताया कि घास दी है—"आनुम्मा की बकरी की ही घास।"

पात्तुम्मा की बकरी और उसका बच्चा आंगन में कटहल के पेड़ की छाया में खड़े हैं। शायद मां बच्चे को दिखा रही होगी कि हमारा खाना कहां से मिलता है। बच्चा लड़खड़ाता हुआ चलता है। उसे उठाकर प्यार करने का जी हुआ। इसी समय सामने आकर खड़ा हो गया हनीफा। एक लुंगी पहने था। उसने कहा—"भाईजान! एक दस रुपये चाहिए। छोटे भाईजान से मांगूं तो डांट देंगे। अबू तक मेरी हंसी उड़ायेगा। देखिए तो, मेरे पास पैसा होता तो एक कमीज बनाकर न पहन लेता?"

"तूने मेरी डबल धोती और कमीज एक दिन ले ली थी न?"

"मैंने?···कुछ नहीं चाहिए मुझे। मैं फौज में चला जाऊंगा। यहां किसी को मेरी जरूरत नहीं है। सरकार को मेरी जरूरत है। याद रखिए—आपने जो डबल धोती और कमीज दी थी···।"

"ठहरो जी। मैंने दीं नहीं। घुलकर आते ही बिना मुझसे पूछे तुमने ले ली थीं। मेरे पास कपड़े कम हैं। सबकी गिनती मेरे पास थी। जब ज्यादा थे तब उम्मा ने चुरा लिये, अब्दुल खादर ने चुरा लिये, पात्तुम्मा और आनुम्मा भी चुरा लेती थीं। तुम्हारी बीवी ऐशोम्मा और अब्दुल खादर की बीवी आनुम्मा ने सिर्फ चोरी नहीं की।" मैंने उसे बीच में टोककर कहा।

"वह डबल धोती और कमीज अबू ने मेरे हाथ से छीन लीं। आप देखिए मेरी हालत!"

"सो किया अबू ने मोटे-ताजे तुम्हारे हाथों से छीन लीं?"

"भरोसा नहीं होता तो अबी से पूछिये, भाईजान! अबी···!"

अबी आया। हनीफा की सभी बातों का अकेला गवाह है अबी। आते ही उसने कहा—"वाप्पा जो कहते, म्बी ने देखा!"

बात यहां तक पहुंची तब आधे खुले हुए दरवाजे के बीच हाजिर हुई रषीद को गोद में लिये ऐशोम्मा। उसने कहा—"बाप-बेटे दोनों सरासर झूठ बोल रहे हैं।

बेटे को सिखा रहे थे, सो मैंने अपने कानों से सुना है। आपकी धोती और कमीज अबी के बाप्पा की पेटी में हैं।"

"चोर ! महाचोर ! अब्दुलखादर और मुझसे लकड़ी तू उठवाता था, याद है ?"

हनीफा ने कहा —' मैं कुछ नहीं जानता। मुझे काम है। खून को पानी बनाकर मेहनत करनेवाला मजदूर हूं मैं।"

"और तेरे केले के बाग भी तो हैं ?"

उसने कहा—"बाग मैं आपको दे दूंगा। सिर्फ दस हजार रुपये मुझे दे दीजिये।"

उस रकम का दसवां हिस्सा देकर ही बाग उसने खरीदा था। चोर-महाचोर।

मैंने उम्मा को बुलाया। उम्मा आयीं तो मैंने पूछा—"जब यह हनीफा छोटा था, इसने पांच रुपये नहीं चुराये थे ? यह मालिक बनकर बैठता था और हम दोनों से—अपने बड़े भाइयों से—पहाड़ जैसी इकट्ठी लकड़ियां सुखाने के लिए डलवाता था। खुद शान से बैठा रहता था और हमें रोज चार-चार चक्रम्[1] मजदूरी देता था। पांच-दस दिन बाद ही बाप्पा को मालूम हो गया। चोरी मैंने की कह कर बाप्पा ने मुझे मारा भी था। आपको याद है उम्मा ?"

उम्मा ने कहा —"हनीफा ने बाप्पा की पेटी से चोरी नहीं की थी। उन दिनों मेरे पानदान में चांदी के सिक्के भरे रहते थे। यह कैसे चोरी करता था, पता है ? नहीं। मैं नहीं कहती। इसके बीवी-बच्चे सुनेंगे।"

"कहो उम्मा ! सुन तो लें !"

मैंने इस बात को बढ़ावा दिया, क्योंकि उम्मा के पानदान से चांदी के सिक्के चुराना तो मेरा रोज का काम था। उम्मा के पास जाकर मैं लेट जाता। उम्मा जरा सोने लगतीं तो झट से पान के डिब्बे से चार चांदी के सिक्के निकाल कर, डिब्बे को जहां-की-तहां रखकर भाग जाता।

उम्मा ने कहा—"ये हनीफा बड़ा होने पर भी दूध पीने आता था दूध पीते-पीते पानदान से सिक्के चुरा लेता। एक बार मैंने पकड़ लिया। मार-मारकर इसे भगा दिया। उसी दिन से दूध पिलाना भी बंद कर दिया।"

"भयंकर चोर ! अब्दुल खादर ने चोरी नहीं की ?"

"वह भी करता था। सिर्फ तूने नहीं की।"

[1]चक्रम—ट्रावनकोर का एक सिक्का जिसका मूल्य आधे आने से कुछ अधिक होता था। 28½ चक्रम = एक रुपया।

वाह ! कितना अच्छा हूं मैं !

"देखा हनीफा ? देखा अबी, लैला, रशीद ? सुना तुम सब लोगों ने ?"

हनीफा से नहीं रहा गया । वह बोला—"उम्मा ! मेरी प्यारी उम्मा ! आपको याद नहीं है । या फिर ऐशोम्मा, अनुम्मा और सबको बताने के लिए आप बनाकर कह रही हैं । ये बड़े भाईजान भी आपके पानदान से पैसे चुराया करते थे । मुझे अच्छी तरह याद है । मुझे और छोटे भाईजान को लेजाकर ये चाय पिलाया करते थे । उसकी कीमत देते थे चांदी के सिक्के में । बड़े भाईजान के पास उन दिनों पैसा कहां से आता था ? बताइये आप ही उम्मा !"

अब विषय बदल देना ही मैंने ठीक समझा—"तूने जब-तब मुझसे दो, तीन, पांच, दस रुपये मांगकर लिये हैं । उनके अलावा सौ रुपये उधार लिये हैं । उसके गवाह हैं सब ईसाई, नायर, ईड़व, जो तेरे दोस्त हैं । उन सबको मैं उम्मा के सामने पेश कर दूंगा । ला मेरे सौ रुपये ।"

"उम्मा ! ये भाईजान क्या कह रहे हैं ? मैंने इनसे रुपये लिये हैं ? इनके लिए मैंने केले, अनन्नास, वगैरह क्या-क्या खरीदा है । अनगिनती बीड़ियां खरीद दी हैं । साग-भाजी, अंडे, बतक के अंडे, मछली क्या-क्या गिनाऊं ? इस सबके हिसाब में इनपर मेरे चालीस रुपये उधार हैं । उनमें से सिर्फ दस रुपये ही मैंने अभी मांगे हैं । सिर्फ दस रुपये !"

"हां-हां, तू बड़ा देनेवाला ! तेरे बाग में जो फल टूट कर गिर गये वही तूने सुखाकर मुझे दे दिये । बाकी सब अब्दुल खादर और सुलेमान ने, पैसा देकर खरीदे और तू इधर आता था, इसलिए वे तेरे हाथों भेजते रहे । तू लाकर मुझे दे देता रहा, और यह ख्याल पैदा करता रहा कि तू ही अपने पैसों से खरीद कर लाया है !"

इतना सुनते ही हनीफा ने पुकार लगायी—"अरी, ऐशोम्मा ! आ जा, बच्चों को भी बुला ले । हमको यहां अब नहीं रहना । अपनी जमीन पर नारियल के पत्ते ही छाकर रह लेंगे । निकल आ ! अभी !"

"ठहर अभी ! उन सौ रुपयों की बात साफ हो जाने के बाद जाना । उम्मा, सुनिये । इसके पास उन दिनों चार साइकिलें थीं । बहुत साल तो नहीं हुए । जब मैं यहां आता था, एक आध-बार उनमें से एक साइकिल लेकर चलाता था । दस मिनट के अंदर वापस कर देता तो भी यह कहता था कि दो घंटे हो गये । मत-

लब यह कि उतना पैसा इसे मिले। कई नायर, ईड़व और ईसाई इसके दोस्त थे। उन सबको लेकर यह मेरे पास एरणाकुलम् आया करता था। जैसे इसने अबी को झूठी गवाही देना सिखा रखा है, उसी तरह अपने उन दोस्तों को भी सिखा रखा था। वे आते ही इसकी मुसीबतों का बयान शुरू कर देते—बेचारा हनीफा कितनी दिक्कतों में है! इसके बादआतीइसकी बारी। यह उधार मांगने लगता। आखिर बच्चों के लिए कुछ ले जाने के नाम पर पांच रुपये मांगता। मैं तीन रुपये देता। उसमें से एक आने के लाजेजेंज खरीद कर ले जाता बच्चों के लिये।

"उन दिनों सवा तीन सौ रुपये की मैंने एक साइकिल खरीदी। कहीं से इसको उस बात का पता चल गया। एक दिन पहुंच गया अपने दोस्तों के साथ मेरे पास। इसको लेकर चार लोग थे और आये थे तीन साइकिलों पर। आते ही धरना देकर बैठ गये—हनीफा को मेरी साइकिल चाहिए! उसे दूकान पर रखे तभी अपनी दूसरी, टूटी-फूटी साइकिलें किराये पर चला सकेगा। मैंने बताया कि मेरे लिए यह साइकिल बहुत जरूरी है। तब इसके मित्रों ने कहा कि हनीफा कीमत दे देगा। बात पूरी भी नहीं हुई कि हनीफा ने नोटों का एक बंडल मेरी गोद में डाल दिया। मैंने गिने तो सिर्फ 240 रु. थे। बाकी? ओह। घर जाते ही भेज देगा। वे लोग जरूर भिजवा देंगे। उनकी जमानत काफी नहीं? फिर उसी समय दस रुपये हनीफा ने मुझसे उधार लिये। तीन रुपये बच्चों के लिए कुछ ले जाने को भी। कई महीने बीत गये। बाकी रुपया नहीं आया। मैं यहां आता हूं तो इसके दोस्त मुझे देखकर छिप जाते हैं।

"ला रे! वह रुपया।"

"मैं फौज में चला जाऊंगा।"

अबी ने कहा—"म्बी बी पौज में चलता।"

लैला ने भी कहा—"लैला फौज में जायगी।"

इसपर ऐशोम्मा बोली—"तब मैं भी रषीद के साथ चली आऊंगी। सरकार को खाना बना दूंगी।"

'बस बस! चुप कर री! इस सभा में तू आकर बात करने लगी! बड़े भाई-जान बैठे हैं, इसलिए···! नहीं तो तुझे···! चल, जा यहां से अंदर!" यह कहता हुआ हनीफा अपनी सिलाई की दूकान में चला गया।

थोड़ी देर बाद रषीद और सुबैदा को लेकर उम्मा मेरे पास आयीं। बोलीं —

"हम जरा नहाने जा रहे हैं। इन बच्चों को संभालो।"

मैंने बच्चों को ले लिया। वे सब नहाने चली गयीं। इधर दोनों बच्चों ने रोना शुरू कर दिया। उनका रोना बंद करने के लिए मैंने बकरी के बच्चे को लाकर उनके बीच छोड़ दिया। दोनों बच्चों ने पेशाब किया। बकरी के बच्चे ने दोनों हाजतें रफ़ा कीं। इस परिषद के बीच आ धमका—शुचित्वगुरु महान अबू! देखते ही पूछा —"यह सब क्या है?"

अबू ने बच्चों का रोना बंद किया। खास कुछ किया नहीं—सिर्फ आंखें चढ़ाकर दिखायी, ओंठ चबाये, चिल्लाया, पात्तुम्मा की बकरी को मार भगाया, बिल्लियों को मारा, मुर्गियों को भगाया!

इसी बीच मौका पाकर मैंने बकरी के बच्चे का मल-मूत्र ले जाकर फेंका और जगह साफ की। बच्चे को भी लेकर आंगन में खड़ा किया।

अबू ने कहा—"देखा—बकरी, बच्चे, मुर्गी, बिल्ली, सबने मिलकर आंगन और बरामदे को कैसा गंदा कर दिया। आप यह सब मंजूर कर लेते हैं।"

"मैं क्या करूं···?"

"पीटना चाहिए।"

सींक जैसा दुबला-पतला अबू चिल्लाने और पीटनेवाला है। उससे सब डरते भी हैं। उसके पास बच्चों को छोड़ जाने की हिम्मत उनकी माताओं और उम्मा को भी नहीं होती।

"बड़े भाईजान! मैंने आपकी धोती और कमीज चुरायी, ऐसा छोटी भाभीजी ने कहा है?"

उसने कहा या नहीं कहा—मैंने कुछ भी नहीं बताया। उसको गुस्सा आ गया। उसने कहा—"हर एक ने अपना-अपना हिस्सा चुराया है। मैंने अकेले नहीं, उम्मा ने भी, छोटी भाभीजी ने भी। यह तो उन्होंने नहीं कहा?"

"आनुम्मा ने यह नहीं कहा कि तूने चुराया है।"

"मैंने एक धोती और कमीज चुरायी है। मैं कहीं भी कहने को तैयार हूं। आखिर बड़े भाईजान ने मुझे क्या दिया है?"

"तू जिसपर सोता है वह पलंग। उसकी कीमत है चालीस रुपये। उस पलंग की दरी, बिस्तर, तकिया, चादर, वह कश्मीरी शाल, जो तू ओढ़ता है। सब। उस एक शाल की ही कीमत पचास रुपये है। तू जिसे जेब में लगाकर बिलस रहा

है, वह कलम—पार्कर फाउंटेन पेन—खरीदी थी मैंने बयालीस रुपयों में। फिर जब कभी तू आता है, हमेशा रुपया! इस सबका कोई हिसाब है ही नहीं?"

"ये सब तो पुरानी चीजें हैं। नया कुछ भी दिया है?"

"जब ये सब चीजें दीं तब नयी थीं।"

"भाईजान, मुझे पच्चीस रुपये चाहिए।"

"किसलिए?"

"चाहिए, कुछ काम है।"

हनीफा ने मांगा। अबू ने मांगा। आज क्या खास बात है? अबू को पैसे की जरूरत कुछ खास नहीं है। दस-बीस जोड़ी धोतियां, कमीजें, बनियानें उसकी पेटी में हैं। एक पेटी भर जूते भी हैं--गिनती में साठ हैं, ऐसा उम्मा कहा करती हैं।

स्नान करके सब औरतें वापस आ गयीं। तब तक घर के सब मर्द खाना खाने आये। आते ही अब्दुल खादर ने कहा—"भाईजान, मुझे पचास रुपये चाहिए। बहुत जरूरी काम है।"

"जा, रास्ता देख!"

हनीफा ने फिर याद दिलाया—"मैंने सिर्फ दस रुपये मांगे हैं।"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। एक घंटे बाद रहस्य खुल गया। डाकिया कुट्टन पिल्ला देहली लांघकर आया—"आपके लिए एक मनीआर्डर है सौ रुपये का।"

कुट्टन पिल्ला के गाल में एक गोला जैसा निकला हुआ है, मानो मुंह के अंदर उसने एक आम की गुठली दबा रखी हो। उसी पर आंख गड़ा कर मैंने पूछा—"इस मनीआर्डर की बात और किसी को मालूम है?"

"सर! हम सबको इसी गांव में रहना है। अब्दुल खादर और हनीफा से मुझे बहुत काम पड़ता है। उन लोगोंने कह रखा है, सर, कि आपके नाम जब भी कोई मनीआर्डर आये, पहले उन्हें बता दूं।"

"अच्छा तो मुझे यह पैसा नहीं चाहिए। कुट्टन पिल्ला ही ले लें।"

"हाय। यह क्यों?"

"पचास और पचीस और तीन पांच मिलकर कितना होता है?"

"सौ।"

"यही इन रुपयों का हिसाब है।"

मैंने सब बात कुट्टन पिल्ला से साफ-साफ कह दी। उसने उत्तर दिया—"सब ऐसा ही है, सर।"

"हूंअअ। सब ऐसा ही होता है। क्या षड्यंत्र। क्या लूट!"

कुट्टन पिल्ला अपनी बेटी सरस्वती को कालेज भेजने की बात कर रहा था। इसी बीच मैंने दस्तखत कर दिये। उस समय उम्मा और आनुम्मा यों ही—बस यों ही—बरामदे में आकर बैठ गयीं।

मैं दस का एक नोट पात्तुम्मा की बकरी को देने लगा, तो कुट्टन पिल्ला ने पूछा—"यह क्या कर रहे हैं, सर?"

मैंने कहा—"खाने दो उसको भी। पात्तुम्मा की बकरी है। बच्चा जने एक-दो दिन ही हुए हैं।"

कुट्टन पिल्ला हंसता हुआ चला गया।

उम्मा ने पूछा—"कितना है रे?"

"आप नहीं जानतीं?"

क्या कहना! वह सारा का सारा उसी दिन साफ!

5

उस दिन शाम को हनीफा की ओर से मुझे चाय मिली। मामूली तौर पर चाय का पैसा अब्दुल खादर देता है। पीते हैं हनीफा की दूकान पर ही बैठकर। मगर उस दिन पैसा हनीफा ने दिया।

हनीफा बड़ा मक्खीचूस है। उसकी दूकान में एक बत्ती तक नहीं जलती। उसकी दूकान से एकदम लगी हुई है अब्दुल खादर की टीन की दूकान। वहां दस-बारह पेट्रोमैक्स-लैंप हैं। एक ग्रामोफोन है। हां, ग्रामोफोन था तो मेरा, मगर उम्मा के सामने रो-रोकर उसने उसे लाकर रख लिया है दूकान में। पेट्रोमैक्स और ग्रामोफोन किराये पर देने के लिए है। शाम के बाद अगर काम हो तो

हनीफा अबू को बुलाकर कहता है—"उस बत्ती को जरा इधर सरका के रखो।"

उसी के प्रकाश में हनीफा अपना काम चला लेता है।

बैठा-बैठा मैं अब्दुल खादर के बारे में सोचने लगा। वह हमेशा ही आग के पास बैठता है। लोहार की भट्टी है उसकी दूकान में। हमेशा परिश्रम करता रहता है। उसके सब बाल पक गये हैं। कई लोग उसको देखकर मेरा बड़ा भाई समझते हैं।

उसने सबसे ज्यादा हिम्मत का काम किया है। हम दोनों मलयालम चौथी कक्षा तक साथ पढ़े थे। उसके बाद मैंने अंग्रेजी स्कूल में प्रवेश किया। जब अब्दुल खादर ने मलयालम सातवीं कक्षा पास की तब मैं कण्णूर जेल में नौ महीने की सख्त सजा भोग रहा था। वह कहानी मेरी 'ओर्मा कुरिप्पु' (संस्मरण) नाम की पुस्तक में है। सजा पूरी करके मैं गांव लौटा तो देखा, कुटुंब सारी संपत्ति कर्ज में डूबी हुई है। घर में ठीक तरह से खाने को भी कुछ नहीं है। अब्दुल खादर उस स्कूल में मास्टर बन गया है, जिसमें पुतुश्शेरी नारायण पिल्ला सर ने हमको 'अ—आ' सिखाया था।

मैं एक अखबार निकालने के उद्देश्य से कोच्चिन गया। थोड़े दिनों बाद लौटकर आया तो देखा—अब्दुल खादर मास्टरी छोड़कर एक दूकान में बीड़ी बनाने लगा है। एक सूप में पत्ते, धागा और कैंची लेकर बैठता और बीड़ी बनाता रहता। एक दिन में दो हजार बीड़ी तक वह बना लेता था। एक या डेढ़ रुपया रोज कमाता था।

मैं फिर बाहर चला गया। इस बार वापस आया तो देखा उसने बीड़ी का काम भी छोड़ दिया है। बाजार में एक छोटी-सी कोठरी है। उसमें वह टीन का काम बड़े जोरों से कर रहा है। टीन से वह तरह-तरह की चीजें बना देता है। यह सब उसे किसी ने सिखाया नहीं—अपनी ही बुद्धि और अपनी ही कोशिशें।

उन दिनों मैं साहित्यकार बनकर एरणाकुलम् में रहता था। 1936–37 का वर्ष था। मैं खूब लिखता था। खाने को भी कुछ न होता, फिर भी लिखता था। अखबारों में प्रकाशित करवाता। फिर वह सब अखबारों से काट-काटकर सिल-सिलेवार रखता। इसी तरह जीवन-यात्रा चला रहा था, तब एक दिन अब्दुल खादर लोहे की छड़ी टेक-टेककर एक मोटा-सा फाउंटेन पेन लेकर मेरे पास आया।

"भाईजान ! इन अखबारों में क्या-क्या छपवाया है, दीजिये। मैं जरा पढ़कर देखूं तो !"

बहुत अभिमान के साथ मैंने अपनी सारी साहित्य-सृष्टि निकालकर उसको दी। फिर उससे दो आने मांग लिये और चाय पीने गया। बहुत देर तक इधर-उधर घूमता रहा, जिसमें वह पढ़कर रसास्वादन करे। उससे चार आने और उधार मांग सकूंगा। उन विश्वोत्तर सृष्टियों का कर्ता उसका अपना बड़ा भाई मांगता है, सो वह अवश्य देगा। ऐसा सब सोचकर मैं वापस कमरे में आया। मगर देखता क्या हूं ? उसने जो पढ़े उन सब कागजों में अपनी मोटी कलम से रेखाएं खींच रखी हैं ! ये सब किस लिए ? मैं एक बीड़ी सुलगाकर कुर्सी पर बैठा ही था कि उसने बुलाया।

"भाईजान, इधर आइये।"

कोई जरूरी काम होगा–मैं उठकरउसकेपास चटाई पर जा बैठा। बहुत अवज्ञा के भाव से उसने मेरी ओर देखा। फिर एक वाक्य जोर से पढ़ा। बहुत गंभीर वाक्य है। लेकिन उसने पूछा—"इसमें आख्यादम्[1] कहां है ?" मेरी समझ में कुछ नहीं आया। "आख्यादम् क्या ?" वह मुझसे ऐसी बातें करने लगा जैसे किसी छोटे विद्यार्थी से। उनमें 'आख्या',[2] 'आख्यात', 'विशेषण', 'अन्वय', फलाना, ढिकाना—व्याकरण संबंधी चर्चाएं थीं। उसने 'फलाना', 'ढिकाना' तो नहीं कहा, आधा घंटे तक भाषणदेकरमुझे मूर्ख साबित करने की कोशिश की। फिर कहा—"भाईजान, थोड़ा व्याकरण सीखिये।" इतना ही नहीं, कई व्याकरण ग्रंथों के नाम भी बता दिये।

मुझे आया गुस्सा। मैंने कहा—"जा रे, यहां से ! उसकी आख्या ! घी चुरा के खानेवाला और बीमार बनकर घूमनेवाला चोर ! वही तो है तू ! चोर कहीं के, देख ! मैंने जो लिखा है, सब जैसे बातचीत करते हैं वैसा ही लिखा है। इसमें तेरा भोंदूपना 'आख्यातम्' न हो तो क्या हो गया ? लंगड़ा कहीं का !"

उसका जवाब मजेदार था —"भाईजान ! चाहे जितनी गाली दें। मुझे कोई एतराज़ नहीं। पर एक बात सुन लें—आप एक साल तक इन सब किताबों का अच्छी तरह अध्ययन करने के बाद ही लिखें।"

[1]आख्यादम्—आख्यातम्, आख्यात—क्रिया, विधेय।

[2]आख्या—संज्ञा, उद्देश्य, कर्तृपद।

"तू जा अपने रास्ते !" मैंने कहा—"घर में सबको मैंने पूछा है कहना ! खासकर बाप्पा और उम्मा को। मुझे पैसा नहीं मिलने लगा है, इसीलिए कुछ नहीं भेजता हूं—यह भी कहना।"

उससे एक पैसा भी उधार नहीं मांगा। हिम्मत नहीं पड़ी। उसका निठल्ला व्याकरण !

वे दिन सब चले गये। अब वह मेरीसभी किताबें बड़ेचाव से पढ़ता है। कभी-कभी हमारे बंधु-बांधवों में किसी-किसी पर कहानी लिखने को भी कहता है। —"आप सिर्फ लिख दीजिये। छपवा मैं लूंगा।"

हां ! पैसा भी वही ले लेगा ! महाचोर !

दूसरे दिन जब लड़कियां लार टपकाती हुई मेरे जामुन के पेड़ की ओर देखती चली जा रही थीं, पात्तुम्मा आकर अपनी बकरी और उसके बच्चे को अपने घर ले गयी।

"यहां कोई इसकी देख-भाल नहीं करेगा, भाईजान ! अबू इसे भगायेगा। फिर कल से इसका दूध निकालकर बेचना है। एक चाय की दूकान में दूध देने का वादा कर रखा है।"

यह निकली सच्ची बात। ले जाने का कारण यह है।

पात्तुम्मा बकरी और उसके बच्चे को ले गयी। इसके बाद बकरी और बच्चा आते थे दिन में करीब दस बजे। बच्चा मजे में दौड़ता-फुदकता घूमता रहता था। मेरे बिस्तर पर चढ़ता। बच्चों के साथ जाकर खाना खाता। बकरी भी बड़ी लालची बन गयी थी। वह भी बच्चोंके पासजाकर जो मिले खा लेती थी। शोर-गुल और भाग-दौड़ !

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन देखा, घर में हंसी-मजाक, शोर, बड़ी खुशी—अबी, पात्तुक्कुट्टी, सैदु मुहम्मद, लैला, अरीफा को दूध की चाय पीने को मिली है। लेकिन उसके लिए इतनी हंसी क्यों ? शोर-गुल क्यों ? मैं उस तरफ गया। दोनों आनुम्मा, उम्मा, ऐशोम्मा—सभी बैठकर पूट्टु के साथ दूध-वाली चाय पी रही हैं। और सब हंसती भी हैं !

"क्या उम्मा ! इतनी हंसी और शोर-गुल किसलिए है ?"

"कुछ नहीं," उम्मा ने हंसते हुए ही कहा।

"भाईजान ! किसी से कहना नहीं, हमने बच्चे को । च दिया।"

"फिर ?"

"आप कहेंगे तो नहीं ?"

"अरे ! बात भी तो सुनूं !"

अब्दुल खादर की बीवी ने बीच में कह दिया—"हमने पात्तुम्मा की बकरी का दूध दुह लिया। पाव भर निकला।"

"यह क्या है, उम्मा ? तुम लोगों ने चोरी से पात्तुम्मा की बकरी का दूध क्यों दुह लिया ?"

उम्मा ने कहा—"नहीं तो क्या ? उसको याद नहीं रखनी चाहिए ?"

आनुम्मा ने कहा—"आप मत कहियेगा। हमारे लिए बड़ी शरम की बात होगी।"

"होने दो शरम की बात। मैं अपने सामने इस प्रकार चोरी कैसे होने दे सकता हूं ?"

जब पात्तुम्मा आयी, मैंने उससे कहा—"पात्तुम्मा ! संभाल ले ! तेरी बकरी का दूध इन सबने मिलकर दुह लिया है। बच्चे को पहले से ही बांध लिया था।"

पात्तुम्मा पर मानो भूत सवार हो गया। "इनके दिल में जरा भी दया-माया है ? अपने बच्चे को क्या बांध सकती हैं ? पूछूं तो जरा।"

वह उस तरफ को दौड़ी। वहां दोनों आनुम्मा, उम्मा, ऐशोम्मा, पात्तुक्कुट्टी, लैला, अबी, अरीफा—सब लोग तैयार खड़े थे।

सबने मिलकर कहा—"अच्छा हुआ। हमने दुहा। और भी दुहेंगे। बकरी और बच्चा यहां पलते हैं। हमारा नाश्ता, हमारे कटहल के पत्ते, हमारा चावल का मांड और हमारे बच्चों का भात खा के मोटी हुई है, हम ही उसे पालते हैं।"

पात्तुम्मा ने उनके बीच फूट डालने की कोशिश की—"री आनुम्मा ! तू मेरी छोटी नन्हीं-सी बहन है न ? तुझे मैंने एक बकरी नहीं दी ? उम्मा, उम्मा ! आप मेरी उम्मा नहीं हैं ? इन जालिम भाभियों से यह क्या करवाया आप लोगों ने ?"

उम्मा ने जवाब दिया—"बस बस ! तेरी भाभियों, तेरी छोटी बहन, तेरी उम्मा—सबने मिलकर ही निकाला है दूध ! हम सबने मिलकर चाय बना के पी—बहुत चाव से पी।"

पात्तुम्मा ने घोषणा की—"अब मैं इस घर में पैर नहीं रखूंगी।" उसने बकरी

के बच्चे को उठाकर छाती से लगाया, प्यार किया—"मेरे प्यारे बच्चे ! तेरा दूध इन जालिमों ने चुराकर पी लिया ! आ, तुझे ठंडा पानी पिलाऊंगी।"

पात्तुम्मा बकरी के बच्चे को लेकर मेरे पास आयी—"मैं जा रही हूं, भाई-जान ! अब देखूं कैसे ये मेरी बकरी का दूध निकालकर पीती हैं !"

वह बच्चे को लेकर चली गयी। मुझे बहुत खुशी हुई। बिना बच्चे के ये बकरी का दूध कैसे निकालेंगी ! वाह !

ठीक दस बजे पात्तुम्मा की बकरी आती। थोड़ी देर बाद पात्तुम्मा और खदीजा भी आ जातीं। पता नहीं पात्तुम्मा नाराज है या नहीं। भाभियों से, बहन से, उम्मा से—सबसे बातें करती है। घर का काम करती है। नाश्ता करती है। बिना दूध की चाय पीती है। बकरी को चावल का मांड पहले की तरह ही दिया जाता है।

कोच्चुण्णी आया तो दूध की चोरी के बारे में मैंने बात की। उसने कहा—"मैंने कहा ही था, थोड़ा दूध दे दो। पात्तुम्मा ने जाके क्या किया पता है ? चार घरों में दूध देने का वादा किया है। एक चाय की दूकान में मैंने भी वादा कर रखा है। मुझे और खदीजा को भी जरा-सा दूध नहीं देती चाय में डालने को।"

ऐसी बात है ? तब तो कोच्चुण्णी और खदीजा भी जरूरत पड़ने पर चोरी करने में न हिचकिचायेंगे !

मैंने पात्तुम्मा से पूछा—"तू खदीजा और कोच्चुण्णी को थोड़ा दूध क्यों नहीं देती ?"

पात्तुम्मा ने कहा—"दूध बेचने का पैसा खदीजा के बाप्पा ही तो लेते हैं। और आज तक सभी ने बिना दूध की चाय पी है, अब क्यों इतना लालच ? क्या मैं पीती हूं ?"

'तू बड़ी कंजूस है !"

"खदीजा के बाप्पा एक चिटफंड में शामिल हुए हैं। उसमें जमा करने को भी तो पैसा चाहिए ?"

यह भी ठीक है ! यही सोचता बैठा था, जब सुलेमान ने तीन अनन्नास लाकर मुझे दिये। कहा—"विलायती अनन्नास हैं, भाईजान ! बहुत अच्छे होंगे !"

उनमें से एक काटकर एक-एक टुकड़ा बच्चों को दिया और मैं भी खाने लगा। ऐसे समय पर अपनी सारी प्रौढ़ि के साथ अबू वहां प्रत्यक्ष हुआ।

"ओह ! पैसेवाले हों तो ऐसा ही सब-कुछ होता है,"—उसने कहा, "मुझे अनन्नास देनेवाला कोई नहीं है। आज आपको बड़ी दावत देने की भी तैयारियां हो रही हैं।"

"कैसी दावत ?"

"बिरयानी, पत्तिरि,[1] कलेजी, चाय···!"

"तू भी आ जा मेरे साथ।"

"मुझे किसी ने बुलाया नहीं। आपने एक बात सुनी—उन कंजूस हमशीरा साहबा ने कल छोटे भाईजान और हनीफ़ा को दूध डालकर चाय भेजी थी।"

"दूधवाली चाय ?"

"हां।"

"क्यों ? तुझे नहीं मिली ?"

"मैं पास ही बैठा था, इसलिए एक सिंगल मुझे भी मिल गयी।"

आश्चर्य की बात है ! अब्दुल खादर, हनीफा और साथ में अबू को भी पात्तुम्मा ने दूधवाली चाय भेजी है ! इसमें अवश्य ही कोई रहस्य है !

"पात्तुम्मा के दूधवाली चाय भेजने का कारण ?"

"हनीफा भाईजान ने स्ट्राइक किया !"

"कैसा स्ट्राइक ?"

"बड़ी इत्तात्ता का सलूका और खदीजा की कुर्ती सीकर देते थे हनीफा भाई-साहब। फिर, जो फटे-पुराने कपड़े होते उनकी मरम्मत भी कर दिया करते थे। कल-परसों कुछ सिलाने के लिए खदीजा गयी तो 'वक्त नहीं है' कह दिया।

---

[1] चावल के आटे में नारियल मिलाकर बनायी गयी रोटी।

आगे ऐसा न कहें, इसलिए रिश्वत है यह दूधवाली सिंगल चाय।"

"और अब्दुल खादर को जो दी ?"

"बड़े जीजासाहब ने छोटे भाईजान से कुछ रुपये ले रखे हैं। भाईजान ने भाभी साहेबा से कहा है कि रुपया जल्दी न दिया तो मुकदमा चलायेंगे। पहले मुद्दालेह जीजा साहब होंगे, दूसरी बड़ी बहन साहबा और तीसरी खदीजा। और उस बकरी को कुर्क करायेंगे। यह सब न करायें, इसलिए है वह सिंगल चाय।"

तो, इस प्रकार रिश्वत देने के लिए भी पात्तुम्मा की बकरी का दूध काम आता है !

अबू ने कहा—"कुट्टन पिल्ला आ रहा है।"

सच है। डाकिया कुट्टन पिल्ला दरवाजे के अंदर आ गया और उसने एक पार्सल मुझे दिया। मैंने दस्तखत कर दिये। डाकिया के जाने के बाद भी मैंने पार्सल नहीं खोला। उम्मा ने पूछा—"क्या है रे, उस बंडल में ?"

मैंने कहा—"मेरी नयी किताब की दस नकलें हैं। छापनेवाले ने मेरे लिए भेजी हैं। बस ?"

"बेचेंगे तो पैसा मिलेगा ?"

"आप चली जाइये उस तरफ ! पैसा ! पैसा ! पैसा !"

मेरे हाथ में उस वक्त एक पैसा भी नहीं था। मनमें एक विचार आया। उम्मा पिछवाड़े की तरफ गयी तो मैंने चुपके से अबू को बुलाया—"ये किताबें बाजार में ले जाके बेच सकता है ?"

फौरन उसने पूछा—"मुझे क्या कमीशन देंगे ?"

"दूंगा भाई, दूंगा।" कहते हुए पार्सल खोलकर नौ किताबें एक कागज में लपेटकर अबू के हाथ में दे दीं और राह देखने लगा।

मेरा ही गांव, मेरी ही लिखी हुई पुस्तक, कोई पैसा देकर खरीदेगा भी ?

एक-दो घंटे बीत गये। अबू लौटकर आया। क्या खूब क़िस्मत ! सब किताबें बिक गयीं। एक किताब की पूरी कीमत अबू को दे दी। बाकी पैसा गिन रहा था तब 'कितना मिला रे ?' पूछती हुई आ पहुंचीं उम्मा ! मुझे बहुत गुस्सा आया। पास रखा था एक गिलास। उठाकर जोर से फेंक दिया दीवार पर। वह हजारों टुकड़े होकर बिखर गया। घर निःशब्द हो गया। मुझे बहुत शांति मिली। उम्मा चुपचाप सब टुकड़े झाड़-बुहारकर एक कागज में ले गयीं। दूर

फेंककर वापस मेरे सामने पश्चिम की ओर देखती हुई बैठ गयीं। मैंने बाकी बची हुई किताब 'विश्वविख्यातमाय मूक्क' पात्तुम्मा की बकरी की ओर बढ़ा दी। वह बड़े लालच के साथ पास आयी।

"यह क्या भाईजान ?" अबू ने पूछा।

"मैंने कहा—'बाल्यकाल सखी' और 'शब्दङ्ङल' दोनों पुस्तकें इस बकरी ने बड़े चाव से खायी हैं। तब मैंने इससे कहा था कि और भी किताबें हैं, तुझे दूंगा। तो अब यह 'विश्वविख्यातमाय मूक्कु' खाकर देखे।

"उसको मत खिलाइये," अबू ने कहा। मैंने पुस्तक अंदर ले जाकर पेटी में रख दी। अबू जब चला गया तब, जो पैसा मिला था उसका आधा मैंने उम्मा की गोद में डाल दिया।

उम्मा ने पूछा—"एक किताब का कितना पैसा मिलता है ?"

मैंने सच-सच बता दिया।

थोड़ी देर बाद अब्दुल खादर खाना खाने आया। मेरे पास जो बाकी रखी थी वह पुस्तक उसने ले ली और कहा—"एक बड़ा बंडल जो था ?"

"दस नकलें थीं। नौ मैंने अबू के हाथ देकर बिकवा दीं। एक का पैसा अबू को दे दिया। बाकी का आधा उम्मा के हाथ में दे दिया।"

"मेरे लिए कुछ नहीं ?"

"तुम इस पुस्तक को बेचकर जो मिले सो ले लो।"

'उम्मा' पुकारता हुआ वह अंदर गया। वहां कुछ गड़बड़ी सुनी। अब्दुल खादर का यह कहना सुनायी पड़ा—"यहां का सारा खर्च मैं ही चला रहा हूं, आप नहीं चलातीं।" थोड़ी देर बाद वह खुश होकर निकल गया। उम्मा का चेहरा देखने पर ऐसा लगा कि उनके पास जो-कुछ थोड़ा-बहुत था वह सब अब्दुल खादर हड़प ले गया।

शाम को चार बजे के करीब कोच्चुण्णी और खदीजा मुझे बुलाने आये। अबू को साथ लेकर मैं गया।

कोच्चुण्णी के घर में उसके बाप्पा, उम्मा और बहन हैं। पात्तुम्मा, कोच्चुण्णी और खदीजा के लिए बकरी, उसके बच्चे, मुर्गियों आदि के साथ आराम से रहने को एक छोटी-सी टूटी-फूटी झोंपड़ी है। ऐसा कोच्चुण्णी ने कहा।

"उसके बारे में आपको कुछ मालूम न हो, यही पात्तुम्मा की इच्छा है। परंतु

आपको वह देखनी ही चाहिए"—अबू ने चुपके से मुझसे कहा।

पत्तिरि और कलेजी की तरकारी पेट भर के खायी। दूधवाली चाय भी पी। पात्तुम्मा का घर देखा।

पात्तुम्मा ने दीनता से पूछा—"भाईजान इधर क्यों आये?" उसका घर बड़ा दयनीय है। गारे की दीवारों पर ताड़ के पत्तों से छाया हुआ एक छोटा-सा कमरा, जिसके किवाड़ किसी पुराने मकान के हैं, रस्सी से बांध लिये गये हैं। कुंडी-ताला वगैरह कुछ नहीं है।

"बड़ी शरमिंदा हूं मैं," पात्तुम्मा ने कहा—"अब मैं जीने लायक नहीं।"

"कुछ परवाह नहीं, पात्तुम्मा! इस दरवाजे को ठीक कराने का पैसा मैं दूंगा।"

"नहीं, भाईजान! अपनी बकरी का दूध बेचकर मैं बनवा लूंगी।"

"नहीं-नहीं, मैं ही दूंगा।"

उसी रात को मैं अपने घरमें पच्छिम की ओर मुंह करके बैठा था। कोच्चुण्णी, सुलेमान, पात्तुम्मा सभी थे।

अब्दुल खादर ने हनीफा से कहा—"देख! कल एकदम सुबह जाना है। कचहरी खुलते ही मुकदमा दायर कराके आ जायेंगे।"

मैंने पूछा—"क्या मुकदमा?"

"एक दीवानी मुकदमा। तुरंत ही एक कुर्की भी। यह मैं बहुत दिनों से टालता आ रहा हूं। लेकिन कुछ घटनाएं ऐसी हुई है कि अब देर नहीं कर सकता।"

"क्या घटनाएं?"

"गरम-गरम पत्तिरि नारियल के दूध में डुबो-डुबोकर तश्तरी में रखीं तब हमको याद नहीं किया! कलेजी की तरकारी कटोरा भर-भरकर परोसी तब भी हमारी याद नहीं की! हमको सिर्फ एक सिंगल चाय और किसी को पत्तिरि और कलेजी!"

आनुम्मा ने कहा—"मैं, उम्मा और भाभियां भी लार टपकाती बैठी रहीं, मगर हमारी भी याद नहीं आयी!"

सुलेमान ने पूछा—"और मैं?"

अब्दुल खादर ने कहा—"सुलेमान! तू पहला गवाह!"

पात्तुम्मा—"या अल्लाह! हम किससे-किससे डरें? उम्मा से तो डरकर रहें

ही, भाभियों से, छोटी बहन से, छोटे भाईजान से, हनीफा से, अबू से, फिर अपने शौहर से ! अब सुलेमान से भी !"

"मुझसे किसी को डरने की जरूरत नहीं"—अबू ने गला फाड़कर कहा।

मैंने कहा—"चुप !"

पात्तुम्मा बोली—"छोटे भाईजान ! मैं सबकी दावत करूंगी। चाय भी। थोड़े दिन धीरज रखें।"

"कितने दिन ?" उसने पूछा।

"मैं बताऊंगी, भाईजान ! लेकिन रे, हनीफा ! तूने ऐसा किया ? खदीजा का कपड़ा सिले बिना वापस कर दिया !"

हनीफा ने जवाब दिया—"मैं यों ही मुफ्त में सीता रहूं ? अबू की कमीज सीना है। इस घर के सब लोगों के कपड़े सीना है। लेकिन कोई मजदूरी भी देता है ?'

अब्दुल खादर ने कहा—"तेरी बीवी का सलूका सीने के लिए मैं पैसा दूं ? लैला के परिकर-कुर्ती सीने के लिए मैं पैसा दूं ? अबी का कोट-पैंट बनाये तो उसका भी पैसा मैं ही दूं ? क्या खूब !"

हनीफा नाराज हो गया—"मुझे कोई कुछ न दे ! मैं फौज में चला जाऊंगा। आज रात को ही चला जाऊंगा।"

मुझे एक घटना याद आ गयी। मैंने कहा—"देख रे ! एक आधा घंटा बाद जाना फौज में। कई बार छुट्टी पर आके लौटता था तब एरणाकुलम् में मेरे पास आता था न ? उन दिनों हमेशा ही पांच-दस के हिसाब से उधार लिया करता था। जो था, सब उम्मा ने ले लिया, अब्दुल खादर ने ले लिया, आदि-आदि कहानियां तू कहा करता था। उसमें से एक पैसा भी तूने वापस नहीं दिया। अब सब दे दे !"

हनीफा ने तुरंत ऐशोम्मा को बुलाया—"निकल चल री ! बच्चों को भी बुला ले ! इस घर में अब नहीं रहना। लोग सर पर चढ़ जायेंगे। हम वहां जाके पत्ते-वत्ते छाके रह लेंगे। उठ रे ! अबी !"

मैंने पूछा—"तूने मुझसे रुपये लिये हैं न ?"

उसने उत्तर दिया—"वह तो सब उन दिनों लिये थे न, भाईजान ? अब किसको याद है ?"

"खैर ! लिये हैं, इतना तो साफ हो गया ! बस है ।"

मैं जाके सो गया । सुबह चार बजे पात्तुम्मा, कोच्चुण्णी और खदीजा के जाने का शोर-गुल सुनकर जाग गया, पर लेटा रहा । उम्मा ने पूछा—"तू उठा है ?"

मैंने कहा—"लेटा ही हूं । क्या बात है ?"

"तेरी जेब में पैसा हो तो एक रुपया दे ! कोई जान न पाये ।"

"कल दिया तो था ।"

"वह सब अब्दुल खादर ने ले लिया । घर तो वही संभालता है । कितनों का खर्च चलाता है ! रोज कितने रुपयों की जरूरत है, जरा सोच तो सही !"

"आप चली जाइये । अब और बोलीं तो मैं इसी समय यहां से निकल जाऊंगा ।"

उम्मा चुप हो गयीं । मैं भी लेटा ही रहा । कुछ समय पहले की बात याद आयी मुझे ।

उन दिनों उस दूसरे छोटे मकान में रहता था । आया था एक टैक्सी से । टैक्सी आकर खड़ी हुई तो बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये । ड्राइवर को नोट गिनकर दिये मैंने, सो सभी ने देखा ।

उस दिन खाना खाकर सोने लगा तब अब्दुल खादर, उम्मा और हनीफा आये । आते ही अब्दुल खादर ने कहा—"भाईजान ! रुपया पास हो तो मेरे हाथ में दे दो । यहां मत रखना । कोई चोर आके मार डालेगा ।"

मैंने पांच सौ रुपये गिनकर उम्मा के सामने उसके हाथ में दे दिये । चोर आके मार डालें, पर पैसा तो नहीं जायगा ? सब लोग संतुष्ट होकर चले गये । मैं शांति से लेटा और एक बीड़ी सुलगायी । तब मुझे लगा कि मकान के अंदर कोई बैठा है । जरा डर लगा और मैंने पूछा—"कौन है ?"

"मैं हूं रे ! मैं छिपकर आयी थी ।"

"क्या बात है ?"

"देख, कानोंकान कोई न जान पाये । तू मुझे पचीस रुपये दे । किसीको भी पता न चले ।"

उम्मा थीं न ? मैंने पचीस रुपये दे दिये । फिर शांति से सो गया । दूसरे दिन से लाइन लग गयी उधार मांगनेवालों की ! ज्यादातर औरतें थीं । सब मुसलमान नहीं । लेकिन सभी का दूध मैंने पिया था ! "बेटा ! तू वह भूल गया ? मुझे दो

रुपये दे दे।"

दो, चार, पांच—इस प्रकार देता-देता जब सौ के करीब पहुंच गया, तब 'नहीं, मैंने किसी का दूध नहीं पिया' कहकर बैठ गया। इस बीच एक और तमाशा चल रहा था। उम्मा अबी और पात्तुक्कुट्टी को लेकर आतीं और कहतीं—"इन बच्चों को कुछ दे दो। लेकिन तांबे का मत देना।"

इतना ही नहीं।

"सुन! तू यहां रहने के लिए आया है। अब तुझसे मिलने तेरे दोस्त लोग आयेंगे न? उन्हें खाना किन बर्तनों में दिया जायेगा?"

"केले के पत्तों में।"

"छिः छिः! शरम की बात है! थोड़ी-बहुत प्लेटें, छोटी तश्तरियां, गिलास—सब चाहिए।"

"मेरे पास पैसा नहीं है।"

"तो फिर मैं उस आनप्परंब[1] की दूकान से तूने कहा है ऐसा कहकर खरीद लाऊंगी।"

बुढ़िया ऐसा ही कर लेगी। आनप्परंब के वक्किकुञ्ञु[1] की एक बड़ी दूकान है। वह मेरा मित्र भी है। वहां उम्मा पहुंच जायेंगी तो वह दूकान की दूकान उठा लाने में भी संकोच नहीं करेंगी। झट से मैंने कहा—"नहीं उम्मा, तुम मत जाओ। मैं ला दूंगा।"

मैंने जाकर बहुत-से बर्तन ला दिये। फिर एक दिन शांति से रहा। बाद में उम्मा ने कहा—"बेटा! अब तू यहां रहने आया है। तेरे यार-दोस्त आयेंगे तो वे कहां सोयेंगे? कुछ उम्दा चटाइयां और तकिये खरीद ला।"

"उम्मा! आप यहां से जाइये।"

पर क्या कहूं? मुसीबत टालने के लिए मैंने वह सब भी खरीद दिया। तब उम्मा को एक तांबे की हंडिया की जरूरत हुई—"कहीं से थोड़ा-सा धान मिले तो किसमें उबालेंगे? नहाने के लिए पानी भी भरा जा सकता है।"

मैंने सोचा—तांबे की हंडिया के बाद बैलगाड़ी। फिर मोटर कार। ऊहूं!

पेटी-बिस्तर लेकर मैं चल दिया। वर्कला होता हुआ मद्रास घूमकर आ गया।

[1] घर का नाम है। व्यक्ति का नाम—वक्किकुञ्ञु। पूरा नाम—आनप्परंब वक्किकुञ्ञु

फिर गया। फिर आया। इसी तरह अब भी आया हूं। हनीफा की फौज-यात्रा जैसी बात नहीं है। मैंने जाने को कहा तो जाता ही हूं। इसीलिए उम्मा बिना हिले-डुले चुपचाप पड़ी रहीं। मैंने उठकर पेटी खोली। जितने रुपये बाकी थे, सारे लाकर उम्मा को दे दिये और कहा —"अब डरना मत। जाने को सोचूं तो भी जा नहीं सकूंगा। राह-खर्च के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। अब मुझे भी खिला-पिलाकर पाल लो!"

इसी प्रकार दिन बीतते गये।

अब एक अद्भुत[1] घटना घटी। पात्तुम्मा की बकरी को दोनों आनुम्मा और ऐशोम्मा ने मिलकर बिना बच्चे के दुह लिया। और दूध डालकर चाय पी ली। एक दिन नहीं, रोज दूध की चोरी होने लगी। पात्तुम्मा इस भरोसे पर शांति से जी रही थी कि बच्चे के बिना बकरी दूध नहीं देगी।

अबी और पात्तुक्कुट्टी को बकरी का बच्चा बनाने की कोशिश की गयी। पर यह जमा नहीं। अंत में सुबैदा और रषीद उसके बच्चे बने। यही अद्भुत घटना जब पात्तुम्मा के कानों में पहुंची, वह छाती पीटकर रोई।

"तुम लोग इंसान हो! ऐसा किया तुमने! मत करो ऐसा! मैं दूंगी दूध तुम लोगों को।"

दूसरे दिन से पात्तुम्मा की तरफ से आधी बोतल दूध आने लगा। सुबैदा, रषीद, अबी, अरीफा, लैला और पात्तुक्कुट्टी सब को मजा हो गया। आनुम्मा, ऐशाम्मा, उम्मा—सबको दूधवाली चाय मिलती अब! आजकल बकरी के साथ उसका बच्चा भी आता। साथ-साथ आधी बोतल दूध लिए खदीजा भी।

अब दो तरह का दूध मिलता है हमारे घर में। एक तो चोरी का, दूसरा पात्तुम्मा का भेजा हुआ। बेचारी पात्तुम्मा!

एक रहस्य अभी मैं जान नहीं पाया—यह बुद्धि औरतों में किसको पहले सूझी थी?

[1] अद्भुत इसलिए कि केरल में बिना बच्चे के जानवर का दूध नहीं दुहा जाता। मान्यता यह है कि बच्चे के बिना बकरी, गाय आदि पन्हातीं नहीं। इसीलिए सुबैदा और रषीद से बकरी के बच्चे का काम लेने की युक्ति निकाली गयी।

बाल्यकाल सखी

सुहरा और मजीद बचपन से ही मित्र थे। उनकी मित्रता में खास बात यह थी कि परिचित होने से पूर्व वे एक-दूसरे के भयंकर शत्रु थे। इस शत्रुता का कारण क्या था ? वे पड़ोसी थे। दोनों के परिवारों में भी परस्पर मित्रता थी। परंतु सुहरा और मजीद एक-दूसरे से शत्रुता ही बरतते रहे। सुहरा सात वर्ष की थी, मजीद नौ वर्ष का। एक-दूसरे को चिढ़ाना, मुंह बिचकाना और डराने का प्रयत्न करना उनकी आदत बन गयी थी।

इसी बीच आम पकने का मौसम आया। सुहरा के घर के पास के पेड़ से आम पक-पक कर गिरने लगे। पर उसको एक भी आम न मिलता था। आम गिरने की आवाज सुनकर वह भाग कर आती। पर देखती क्या —मजीद उस आम को चूस कर खा रहा है। वह सुहरा को देने का नाम भी नहीं लेता। यदि कभी देने भी लगता तो वह आधा खाया हुआ होता। और यदि सुहरा कहीं गलती से भी लेने के लिए हाथ बढ़ा देती तो वह आम देने के बदले अपनी कुहनी उसकी ओर दिखाकर कहता—'ले खा ले!' फिर जब मिलते, वह आंखें दिखाकर, जीभ निकालकर उसे डराने लगता। सुहरा इस सबसे डरती नहीं थी। वह भी उसी प्रकार प्रतिकार करती थी। फिर भी आम के संबंध में तो सुहरा को हार खानी ही पड़ती।

आम उसे क्यों नहीं मिलता ? हवा चले या न चले, सुहरा सदा उस पेड़ के

नीचे खड़ी रहती। पर गिरता कुछ भी नहीं। एक पत्ता भी नहीं गिरता। वह जानती थी कि बहुत-से पके आम उस पेड़ पर हैं। गिरते नहीं तो उस पर चढ़कर तोड़ना चाहिए। परंतु उसमें तो बहुत-से लाल चींटे हैं। काट-काट कर जान ले लेंगे। काटनेवाले ये बेंबुत न हों तो भी पेड़ पर चढ़ना क्या उससे हो सकेगा? लड़की जो है।

एक दिन लार टपकाती हुई वह इसी प्रकार खड़ी थी कि डालियों से टकराती हुई कोई वस्तु भद्द से आकर गिरी। ओहो! सुहरा उसकी ओर दौड़ी। आनंद से झुककर ज्योंही उसे उठाने को हुई, वह लज्जा से गड़ गयी! वह तो थी नारियल की एक छोटी-सी बतिया! यह कैसी मेरी भूल! किसी ने देख तो नहीं लिया मुझे? नहीं। आम के पेड़ से यह नारियल की बतिया कैसे गिरी? उसने इधर-उधर नजर दौड़ायी और देख लिया! आग लग गयी उसके बदन में। वह छोकरा!

मजीद ने विजय के भाव से आवाज की—'जूगज्जूगू! जूगज्जूगू!' और फिर वह चला उस पेड़ के नीचे। आंखें खूब बड़ी-बड़ी फाड़कर डरावनी तरह से दिखायीं। जीभ जितनी निकाल सका, निकाली। उग्ररूप! उसे देखकर उस इलाके की सभी लड़कियां 'अरी अम्मा री!' चिल्लाती हुई भाग जातीं। बहुत-सी भागती भी हैं परंतु सुहरा नहीं भागती। इतना ही नहीं, सर एक ओर टेढ़ा करके जीभ निकालकर, आंखें फाड़ती हुई वह भी वैसे ही खड़ी हो गयी!

मजीद गुस्से से भर गया। इतना बड़ा एक लड़का—उसे एक छोटी-सी पगली छोकरी डराने की कोशिश करती है! वह और निकट आया। उसकी आंखें और बड़ी हो गयीं। भौंहें तन गयीं। नथुने फैलने लगे। एक भयानक आवाज वहां गूंज उठी—'झूं!'

सुहरा भाग खड़ी नहीं हुई। भौंहें चढ़ाकर, आंखें फाड़कर, नथुने फुलाकर उसने भी चीखा—'झूं!'

मजीद स्तब्ध खड़ा हो गया। इतनी-सी यह छोकरी! एक सुपारी बेचनेवाले की लड़की! यह इस लकड़ी के ठेकेदार के बेटे से क्यों नहीं डरती? लड़कियों को तो किसी भी हालत में लड़कों से डरना ही चाहिए न?

मजीद बहुत निकट चला गया। पर वह जरा भी पीछे नहीं हटी। मजीद का अभिमान धुआं हो गया। उसे बहुत गुस्सा आया। वह बोल उठा—'वाह री!'

फिर उसने जोर से उसका हाथ पकड़ते हुए गंभीर बनकर पूछा—'तेरा नाम क्या है री ?' जानने के लिए नहीं पूछा—उसका नाम वह जानता था, पर कुछ पूछना तो था ! पुरुष था न ! इसीलिए उसने पूछा। यह सब उसने इस भाव से किया, मानो अभी उसे खत्म कर देगा। लड़की के छोटे-छोटे दांत और दस-के-दस नाखून किरकिराने लगे। एक क्षण के लिए उसकी समझ में नहीं आया कि क्या करे। उसके हाथ काटकर टुकड़े कर दे या नोचकर खून बहा दे। 'तेरा नाम क्या है री ?'—उसके अब्बा या अम्मी कोई भी उसे 'री' या 'तू' कह कर नहीं पुकारते। फिर यह छोकरा—मुंह बनाकर दिखलानेवाला, आम न देनेवाला, कुहनी काटने को कहनेवाला, यह गंदा छोकरा क्यों इस तरह बुलाता है ? गुस्से से भरकर वह आगे बढ़ी। अपने बायें हाथ के नुकीले नाखूनों से मजीद का दाहिना हाथ पूरी ताकत लगाकर खरोंच लिया।

जैसे आग में तपे हुए चिरवा[1] से चीरे लग गये हों, वैसे तड़पकर मजीद ने हाथ छोड़ दिया। 'अरी अम्मा री !'—वह चीख उठा। ऐसा डर नहीं था उसे। उसने भी सोचा, लड़की को उसी तरह खरोंच ले। पर अपने सभी नाखून उसने पहले ही दांतों से काट-काटकर खत्म कर दिये थे। अब क्या करे ? या तो दांत से काटे या फिर घूंसे जड़े। मगर वह भी उलटकर घूंसा लगा दे तो ? जैसा भी हो, एक तो लड़की ने नाखूनों से खरोंचा, फिर घूंसे भी जड़े—ऐसा लोग सुनेंगे तो कितनी शरम की बात होगी ! आखिर उसने कुछ नहीं किया। हार मानकर, लज्जित होकर खड़ा रहा।

सुहरा ने उसे दांत निकालकर डराया। परंतु मजीद टस से मस न हुआ। फिर उसने मुंह भिचका कर मजीद को चिढ़ाया—'अरी अम्मा री !' तब भी मजीद चुपचाप खड़ा रहा। वह सोच रहा था, अपनी बेइज्जती छिपाने के लिए तुरंत कुछ कहना चाहिए और सुहरा को पूरी तरह नीचा भी दिखा देना चाहिए। लड़का हूं न ? पर क्या कहे ? कुछ पक्की बात, भारी बात होनी चाहिए। उसे कुछ सूझा नहीं। चारों ओर खोज कर देखा। उसे दिखाई दी—केलों के पेड़ों के बीच सुहरा की झोंपड़ी, मिट्टी की बनी और घास से छायी। दूसरी ओर उसने देखा अपना मकान—नारियल के पेड़ों के बीच टाइलों से छाया और सफेद पुता हुआ। उसे

[1] 'चिरवा' एक औजार, जिसके लोहे के फल में बहुत-से दांते होते हैं। नारियल के नरेटी सहित दो टुकड़े करके उसमें घिस-घिस कर गरी कसी जाती है।

युक्ति सूझ गयी। सुहरा शरम से गड़ जाये ऐसे भाव से उसने कहा— 'मेरे घर का छप्पर टाइलों का है।'

पर इसमें कौन-सी बड़ी बात है? अपना घर घास से छाया और मिट्टी से बना है तो उसमें शरमाने का क्या है? सुहरा ने मुंह मिचका दिया और उसकी नकल करके जोर से कहा—'अरी अम्मा री!'

तब मजीद ने एक और बात कही—'तेरा अब्बा सुपारी बेचनेवाला एक टुट-पुंजिया है, मेरे अब्बा बड़े भारी व्यापारी हैं, लकड़ी बेचनेवाले!' इसमें भी सुहरा को कोई बड़ी इज्जत की बात दिखाईं नहीं दी। वह सीधे आम के पेड़ के ऊपर देखती खड़ी रही। जैसे वह मजीद नाम का जंतु उसके पास खड़ा ही न हो!

मजीद को रुलाई-सी आ गयी। बेइज्जती! हार! सबने मिलकर उसे बहुत व्याकुल कर दिया। गधे की तरह 'ची—भौं' करके जोर से रो पड़ने की इच्छा हुई उसको। रो सकता तो मन को थोड़ी शांति होती। पर···एकाएक मानो उसे कोई इलहाम हो गया। मेरे पास तो एक ऐसी करामात है जो दूसरा कोई नहीं कर सकता। उससे मैं सुहरा को हरा दूंगा। उसने आसमान और जमीन को देख-कर एक गंभीर घोषणा की—'मैं आम के पेड़ पर चढ़ सकता हूं!'

सुहरा की आंखें अचल हो गयीं—आम के पेड़ पर चढ़ सकना! यह तो एक बड़ा हुनर है! वह कुछ घबरा गयी। वह चढ़ गया तो पका आम मुझे क्यों देने लगा? तो पहले ही हक जमा लेना चाहिए, उसने तय किया। अपने हाथों की पहुंच के जरा ऊपर लटके हुए दो बड़े आम दिखाकर उसने गंभीरता से कहा— "छोकरे! वे दोनों बड़े-बड़े पके आम पहले मैंने देखे हैं!" मजीद ने जवाब नहीं दिया।

वह बोलता क्यों नहीं? जरूर उन बेंबुतों से डरता होगा! उसने कहा—"वे बेंबुत खा जायेंगे।" उस लड़की का स्वर और भाव मजीद को कुछ अच्छा नहीं लगा। उसे गुस्सा आ गया। बेंबुत! बेंबुत क्या, बिच्छू ही क्यों न भरे हों, फिर भी मैं चढ़ूंगा। हूं! दोनों बड़े आम उसने देखे हैं, अच्छा!

मजीद अपने कपड़े संभालता हुआ पेड़ पर चढ़ने लगा। बेंबुत उसके सारे शरीर में चिपट गये। पेड़ की रगड़ से उसकी छाती की चमड़ी छिल गयी। इतने पर भी उसने सुहरा के देखे दोनों आम तोड़ लिये और वह विजयी बनकर नीचे उतर आया।

सुहरा दौड़कर उसके पास गयी—लालच! घबराहट! उसने हाथ बढ़ा दिया—"ला, छोकरे, इधर।" मजीद मौन रहा। मुंह लम्बा करके, ओंठ दबा कर वह जैसा का तैसा खड़ा रहा।

"दे रे, छोकरे! मेरे देखे हुए हैं।"

मजीद ने परिहास के रुख से उसे देखा—"लार टपकती है छोकरी की?" और वह दोनों आम सूंघता हुआ चलने लगा, मानो अपने-आप से ही कह रहा हो—'अहा! कैसी सुगंध!' सुहरा को गुस्सा आया। शरीर में मानो आग लग गयी। उसका हृदय···ओह! आंखों से आंसू झरने लगे। वह सिसक-सिसक कर रोने लगी।

मजीद लौट आया। अपनी प्रामाणिकता स्थापित करने का अच्छा मौका मिला उसे। उसने आम सुहरा की ओर बढ़ा दिये। परंतु इच्छा होने पर भी सुहरा ने अपना हाथ नहीं बढ़ाया। मजीद ने दोनों आम उसके सामने रख दिये। परंतु लड़की ने उन्हें नहीं उठाया। इतना त्याग! उसे भरोसा नहीं होता था। अपने दोनों हाथ पीठ के पीछे बांध कर आंसू बहाती हुई वह खड़ी रही।

मजीद ने अभिमान के साथ कहा—"चाहिए तो और तोड़ दूंगा।" सुहरा का दिल पसीज गया—चाहिए तो और तोड़ देगा! त्यागी! धीर! सूरमा! कितना अच्छा लड़का है। मैंने इसको नोचा, ठीक किया? अब वह बड़ी संयमी बनकर स्वयं भी त्याग करने को तैयार हो गयी—"मुझे एक ही काफी है!"

अब उस महात्यागी ने भी निस्सार भाव से कहा—"सब ले ले, लड़की!"

'मुझे एक ही काफी है!"

उसने एक आम लेकर मजीद की ओर बढ़ा दिया। मजीद ने लेने से इनकार किया। सुहरा आग्रह करने लगी और बोली—"न लेगा तो रोना आयेगा।"

मजीद ने ले लिया। चूसने लगा तो उसका रस छाती पर बह चला। सुहरा ने देखा उसके शरीर में बेंबुत चिपके हुए हैं। उसे बहुत दुख हुआ। वह उसके शरीर से लगकर खड़ी हो गयी और उन बेंबुतों को निकाल-निकालकर फेंकने लगी। उसके नाखून शरीर में छुए तो मजीद को डर मालूम हुआ।

उस दिन फिर सुहरा ने मजीद को नहीं नोचा। भविष्य में बहुत दिनों तक वह उसे नोचती और काटती भी रही। उसके इतना ही कहने से कि 'मैं नोच लूंगी,'

मजीद डर से कांप जाया करता था। बाद में उसके उन तेज नुकीले औजारों को बड़े कौशल से, उसकी सम्मति लेकर ही उसने काट दिया था।

2

एक दिन सुबह सुहरा और मजीद मिलकर अड़ोस-पड़ोस से पेड़-पौधों की कलमें एकत्र कर रहे थे। कलमों का गट्ठर सुहरा ढो रही थी। मजीद रोब दिखाता हुआ आगे-आगे चल रहा था। पुरुष जो ठहरा !

मजीद के हाथमें एक खुला चाकू था। आगे चलकर क्या-क्या बड़ा काम करके दिखायेगा, इसका बखान करता जा रहा था वह। सुहरा का काम सब सुनना, हुंकारी देना, खुश होना और आश्चर्य करना मात्र था। मजीद के स्वप्न अनोखे होते हैं। कांचन प्रभा में डुबकी लगाताहुआ एक सुंदर लोक। उसका राजाधिराज है मजीद और पट्टमहिषी है सुहरा। सुहरा को कोई रोक नहीं सकता। उसे रोना आता है। उसके नाखून आगे बढ़ेंगे, और फिर मजीद के शरीर में जलन ही जलन होगी। ऐसा अनुभव न हो, इसलिए मजीद बहुत संभलकर ही बात करता है। लेकिन कभी-कभी वह भूल जाता है।

भावना का गुलाम है मजीद। भविष्य में वह एक बहुत बड़ा महल बनवायेगा। उसकी दीवारें सब खालिस सोने की होंगी। बरामदा बेशकीमती हीरे-मोतियों से जड़ा होगा। और उसकी छत ? अरे ! कुछ सूझता नहीं ! यह सुहरा हुंकारी नहीं भरती, इसीलिए तो ! यदि हुंकारी देकर सुनती होती तो तुरंत मजीद को बात सूझ जाती।

"सुहरा !"

"क्या मजीद ?"

"तू हुंकारी क्यों नहीं देती ?"

"देती तो हूं। पर तुम मुझसे 'तू' कह कर क्यों बोलते हो ?" वह गुस्से के साथ

आगे बढ़ी । उसके नाखूनों के प्रहार से मजीद तिलमिला उठा । वह चाकू दिखाता हुआ उसकी ओर मुड़ा । लड़की ने नाखून बढ़ाकर, आंखें फाड़ते हुए अपना भीषण रूप प्रकट किया । 'मैं और नोच लूंगी' कहकर उसने मजीद को डराया ।

पुराना नोचना-खसोटना सब मजीद को याद आ गया । उसका खून ठंडा हो गया । नाखूनवाली सुहरा भयानक है । ये नाखून न होते तो कैसा अच्छा होता ! पर हैं तो सही । और उनका प्रयोग करने में उसे जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती, इस हालत में उसे और चिढ़ाना क्या ठीक होगा ? निर्दोष साधु का भाव दिखाते हुए उसने पूछा—"सुहरा ने मुझे क्यों नोचा ?"

'छोकरे ने मुझे 'तू' क्यों कहा ?"

मजीद ने अचभा दिखाया—"मैंने ? कब ? कभी नहीं । शायद सुहरा ने सपना देखा होगा ।"

मजीद का मुंह और भाव देखकर सुहरा का दिल बेचैन हो उठा । 'सचमुच क्या मजीद ने 'तू' कहा था ? शायद मुझे लगा ही होगा । नहीं नहीं, उसने नहीं कहा । फिर मैंने उसे नोचा सो तो बड़ा जुल्म हो गया । लाल-लाल सूजे हुए चार निशान । ये तो मेरे दिल की कठोरता के निशान हैं !' उसकी आंखें भर आयीं ।

मजीद देखी-अनदेखी करके सफेद रेत बिछी हुई उस गली में चलता हुआ अपने-आप बोलने लगा—"मेरा कोई कुसूर न होने पर भी अम्मीजान और अब्बा बेकार मुझे डांटते हैं, पीटते हैं और कोई-कोई बिना मतलब के नाखून मारते और नोचते हैं । इसमें उन सबको खुशी होती है । जब हम चल बसेंगे तब वे सब शायद याद करके कहेंगे—वह बेचारा मजीद जिंदा होता तो एक-आध बार कम से कम नोच तो सकते !" कह चुकने के बाद चालाकी से उसने जरा-सा मुड़कर पीछे देखा । शाबाश ! सुहरा के गालों पर आंसुओं की दो धाराएं ! वह खुश हो गया ।

बालसूर्य पहाड़ी के शिखर पर चढ़कर मुसकराता हुआ नीचे के गांव को कनक-प्रकाश में डुबा रहा था, मानो मजीद के आनंद में शामिल होना चाहता हो । उस पहाड़ी के पीछे से दो धाराओं में विभाजित होकर पहाड़ी और गांव को घेरती हुई और कुछ दूरी पर फिर एक होकर पिघले हुए सोने जैसी बहती नदी । इस दिव्य सौंदर्य के बीच गांव की निःशब्दता को भंग करनेवाले पक्षिगण के कल-कूजन में मजीद सुन रहा था एक अनिर्वचनीय आनंद की प्रतिध्वनि ।

लेकिन सुहरा के हृदय में तनिक भी आनंद नहीं था। उसने एक अक्षम्य अपराध कर डाला था—'बिना किसी कारण के ही तो उसने मजीद को खरोंचा था ! याद आते-आते दिल में दर्द भरने लगा। सूजे हुए निशान हैं—चार, बेचारे मजीद की पीठ पर ! अपनी गलती को कैसे मिटाये ?'

मजीद जिस महल के बारे में बातें कर रहा था उसी की याद दिलाते हुए सुहरा ने धीरे-से कहा—"लड़के ! फिर वह महल ?" मानो इस बीच कुछ हुआ ही नहीं। मजीद कुछ बोला नहीं। परंतु थोड़ी देर बाद उसने पूछा—"सुहरा हुंकारी दे रही है ?"

सुहरा ने दुखी भाव से कहा—'हां हां !' और अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए वह तीन बार बोली—'हूं-हूं-हूं।'

"हां तो फिर," मजीद आगे कहने लगा—"वह महल पहाड़ी के ऊपर होगा।"

वैसा हो तो सारा गांव वहां से देख सकते हैं। और जो दो नदियां एक बड़ा नद बनकर बहती हैं सो बहुत दूर तक दिखाई देती हैं। मजीद, सुहरा और गांव के दूसरे बच्चों ने मिलकर कई बार उस पहाड़ी पर चढ़कर देखा है न ? वहां मजीद जो महल बनवायेगा वह बहुत बड़ा होगा।

"फिर ?" उसने बहुत उत्सुकता और उत्साह के साथ मजीद से पूछा—"वह महल कितना ऊंचा होगा ?"

ऊंचाई की कोई सीमा है ? मजीद ने कहा—"बहोत !"

'बहोत' जो कहा जाता है सो कितना है, सुहरा को पता नहीं। उसने पूछा—'केले के पेड़ जितना ?"

'केले के पेड़ जितना !' मजीद को अच्छा नहीं लगा। केले के पेड़ जितना ऊंचा महल। 'छिः !' कहकर उसने सुहरा की ओर देखा।

सुहरा ने फिर पूछा—"तो क्या नारियल के पेड़ जितना ?"

मजीद उसको भी तुच्छ बताकर हंस दिया।

तब सुहरा ने आसमान की ओर मुंह उठाया और शंकित होकर पूछा—'आसमान तक ?"

"हां"—मजीद ने मंजूर किया—"आसमान तक ही होगा।"

तब लड़की को एक और समस्या दिखलाई पड़ी—"क्या उसमें लड़का अकेला

रहेगा ?'

"नहीं," अरब की कहानियों की याद करते हुए मजीद ने जवाब दिया—"मैं और एक शाहजादी।"

शाहजादी ? शाहजादी तो कोई गांव में नहीं है। तो भी—"कौन है वह लड़की ?"

जैसे कोई रहस्य हो, मजीद ने दबे स्वर में कहा—"वह है कोई।"

यह सुनकर सुहरा के मुख की दीप्ति गायब हो गयी। उसे गुस्सा आया और दुख भी हुआ। उसने पौधों की सब कलमें नीचे फेंक दीं। आंखें डबडबाकर बहने लगीं। उसने कहा—"तो उस शाहजादी से ही यह उठवाओ।"

मजीद ने हुक्म दिया—"उठा के ला, छोकरी !"

सुहरा जोरों से रोने लगी—"मैं नहीं आती छोकरे के साथ। शाहजादी से उठवाओ।" उसके उस तरीके ने, उस खड़े होने ने मजीद के दिल को पिघला दिया। वह जाकर उसके सामने बैठ गया—"सुहरा है मेरी···"

"हैं एंएंएं···शा···शा···ह·· जा···दी !" उसका मुंह फिर से प्रसन्न हुआ। "जा छोकरे"—उसने मुसकरा कर कहा।

"अम्मीजान की कसम···!"

सुहरा खुश हो गयी। मजीद और सुहरा साथ-साथ उस महल में रह सकते हैं। कितना मजा आयेगा ! वह आंसू बहाती हुई, मुसकराती हुई वैसे ही खड़ी थी। मजीद उसके नाखून काटने के लिए आगे बढ़ा।

"छोड़ दे छोकरे !"

जैसे वर्षा की बूंदों के बीच से पूर्णचंद्र मंदस्मित दिखलाई पड़ता है वैसे ही आंसुओं के बीच से सुहरा ने मुसकरा दिया।

"तब मेरे नाखून नहीं काटना"—सुहरा ने होंठ सिकोड़कर कहा—"फिर कभी भी छोकरा बेकार बके तो मुझे नोचना है।"

"सुहरा मुझे नोचेगी ?"

"हां, नोचूंगी ! हमेशा-हमेशा नोचूंगी"—दांत दबाकर, भौंहें तरेरती हुई वह नोचने के लिए तैयार हो गयी।

मजीद सिहरकर वहां से उठ गया। और जैसे किसी भयानक गलती की याद कर रहा हो, वैसे उसने कहा—"शाहजादी नोच नहीं सकती !"

"ओह ! शाहजादी अगर नोचेगी तो वह कोई बड़ा पाप हो जायेगा ?" सुहरा ने जरा शंकित होकर पूछा।

"अम्मी की कसम," मजीद ने कसम खायी—"अम्मी की कसम, नोचना मना है।"

सुहरा घबरा गयी। यदि शाहजादी के लिए नोचना मना है तो नाखूनों की क्या जरूरत ? उसने कोई महात्याग करने के भाव से दोनों हाथ आगे बढ़ाकर सम्मति दे दी —"तो फिर काट डालो।"

मजीद खुश होकर सुहरा के सामने बैठ गया।

तीरों के समान लंबे और नुकीले दस के दसों नाखून मजीद ने काटकर फेंक दिये। फिर वह उठकर खड़ा हो गया। दोनों ने जाकर अपना बाग बनाया। अपने घर के लंबे-चौड़े आंगन के तीनों ओर मजीद ने छोटे-छोटे गड्ढे खोदे। उनमें सुहरा ने एक-एक कलम लगा दी और पानी भी डाल दिया। तरह-तरह के पौधों की कलमों से क्यारियां भर गयीं। कोने में लगी थी एक जवाकुसुम की कलम। उसमें मुरझाता हुआ एक लाल फूल भी था।

रोज सुबह सुहरा मजीद के घर जाकर उन पौधों को पानी देती। एक बार सुहरा की मां ने हंसी करते हुए पूछा—"क्यों सुहरा, दूसरों के पौधों को पानी देती हो ?"

"दूसरों के नहीं हैं न ?" सुहरा ने जवाब दिया।

उस दिन शाम को सुहरा और मजीद आंगन में खड़े थे। बढ़ती हुई पत्तियों से भरे उन पौधों को दिखाकर मजीद ने जोर से पूछा—"ये सब सुहरा के हैं ?"

"नहीं तो क्या छोकरे के हैं ?"

मजीद परिहास के साथ हंसा—"लड़की को कम लोभ नहीं है।"

सुहरा को गुस्सा कैसे न आता ? उसने मजीद को नाखूनों से खरोंचने की कोशिश की। परंतु नाखून तो थे ही नहीं, इसलिए मजीद ने कहा—"और खुजाओ, बड़ा मजा आ रहा है।"

सुहरा अपने नाखूनों की ओर देखकर रो पड़ी और चीखकर बोली—"तो मैं दांतों से काटूंगी", और मजीद का हाथ पकड़कर वह काटने लगी। मजीद ने कोई चारा न देखकर कुरान शरीफ की कसम खायी—"कसम, शाहजादी कभी काट नहीं सकती ! मना है।"

सुहरा ने आंसू बहाते हुए पूछा—"किस को ?"

मजीद ने मुसकराकर उत्तर दिया—"किसी को नहीं।"

3

सुहरा हिसाब में अच्छी थी। उस्ताद उसकी तारीफ करते थे और मजीद को मारते थे। हिसाब के संबंध में मजीद बहुत गड़बड़ था। कितनी भी मेहनत करे, उसका हिसाब कभी ठीक नहीं होता था।

उस्ताद मजीद को पुकारते थे—'मूर्खराज' कहकर। हाजिरी लेते समय भी यही नाम ! किसी को इस पर शिकायत नहीं थी। मजीद था ही मूर्ख। इसलिए बच्चों के बीच में बैठा हुआ जोर से वह जवाब देता—"हाजिर।"

"एक और एक कितना होता है रे ?" एक दिन गुरु ने शिष्य से पूछा। सारी दुनिया जानती है कि एक और एक दो होते हैं। परंतु मजीद ने इसका जो अद्भुत उत्तर दिया उसे सुनकर गुरुजी ठठाकर हंस पड़े। वह उत्तर बाद में उसका मजाक का नाम ही बन गया। जवाब देने के पहले मजीद ने बहुत सोचा था। दो छोटी नदियां मिलने पर एक जरा बड़ी नदी बनकर बहती हैं। इसी प्रकार दो 'एक' मिलने पर थोड़ा बड़ा, मोटा 'एक' बनता है। इसी तरह हिसाब लगाकर बड़े अभिमान के साथ उसने उत्तर दिया—"जरा बड़ा एक !" गणित शास्त्र में इस प्रकार एक नये तत्व का आविष्कार करने के कारण गुरुजी ने उस दिन उसे बेंच पर खड़ा किया।

'जरा बड़ा एक !' सब लोग उसको देखकर हंसने लगे। फिर भी मजीद ने मंजूर नहीं किया कि एक और एक दो होते हैं। इसलिए हथेली में छह गरम-गरम बेंत लगाकर उस्ताद ने उसे सब मिलाकर थोड़ा अच्छा बड़ा एक प्रहार समझ लेने की सलाह दी।

इसके बाद उसको देखते ही उसके साथी आपस में कहने लगते—"जरा बड़ा एक।"

इस मखौल और इसके कारण ने मजीद को बहुत दुखी बना दिया। उसने जो कहा सो सही है। फिर क्यों कोई उस पर विश्वास नहीं करता? शायद गलत ही हो! शायद वह मूर्ख ही हो। असह्य दुख के साथ मजीद ने जाकर अपनी अम्मी से शिकायत की। अम्मी ने सलाह दी सब दुख अल्लाह के सामने रख देने की—"रब्ब उल आलमीन किसी की फरियाद अनसुनी नहीं करते, बेटा!"

इस उपदेश को मानकर उस नन्हे-से बालक ने दुनिया के मालिक से भावपूर्वक प्रार्थना की—"मेरे परवरदिगार! मेरा सब हिसाब ठीक कर दीजिये।" यही उसकी पहली प्रार्थना थी। दिन-रात वह प्रार्थना करता था, तो भी उसके सवाल गलत ही निकलते थे। उसे बहुत बेंत लगते। हथेली सदा दर्द करती रहती। वह बर्दाश्त नहीं कर सका। उसने सब बात सुहरा से कही। वह भी बहुत झगड़ों के बाद ही। 'जरा बड़ा एक' बनने के बाद वह किसी से बात नहीं करता था। नजदीक की बैंच पर बैठी हुई सुहरा देखती, पर वह मुंह फेर लेता। आखिर उसने बात की। सुहरा हंस दी। फिर उसने अपने बैठने की जगह बदल दी। मजीद के बिल्कुल नजदीक बैंच के कोने में वह बैठने लगी। तब से मजीद को मार नहीं पड़ी। उसके सब सवाल ठीक।

"ओहो!" उस्ताद को अचंभा हुआ—"जैसा मैंने सोचा था उस तरह तुम्हारी खोपड़ी में सारी मिट्टी ही मिट्टी नहीं भरी है!" उस्ताद की इस तारीफ ने मजीद के मखौल के नाम को मिटा दिया। लड़के ईर्ष्या के साथ कहने लगे—"मजीद ही दर्जे में पहला है।"

सुन सुनकर सुहरा मुसकराती थी। पर उसका मतलब किसी की समझ में नहीं आया। मजीद के सब सवाल ठीक निकलने का रहस्य ही उसकी मुसकराहट में छिपा था। हिसाब करने के लिए जब सब बच्चे उठकर एक-दूसरे की ओर देखते खड़े होते तब मजीद की बायीं आंख सुहरा की स्लेट पर होती। वह सारा सवाल अपनी पट्टी पर नकल कर लेता। गणित पूरा कर चुकने के बाद भी सुहरा नहीं बैठती। पहले मजीद बैठता। मदरसे से जब एक साथ घर की ओर चलते तब सुहरा कोई दूसरा सुन न पाये ऐसे ढंग से मजीद को चिढ़ाती। कई बातें याद करके वह मुसकराती-मुसकराती कहती—'जरा बड़ा एक!' अपना सारा गुस्सा एक शब्द में भरकर मजीद कहता—'शाहजादी!' सुनकर, चांदी की

घंटी की मंद-ध्वनि के समान शोक-मधुर भाव से हंसती हुई सुहरा अपनी अंगुलियों को देखने लगती। सब नाखून बड़ी अच्छी तरह कटे हुए! सफाई और सदाचरण के लिए वह मदरसे में सबके लिए नमूना बन गयी थी। मजीद के कपड़ों में स्याही और फलों आदि के रस के दाग भी पड़े होते थे।

मजीद आसपास के आम के पेड़ों पर चढ़ जाता और सबसे ऊंची डाल से चिपटकर फैले हुए पत्तों के ऊपर से सारी दुनिया को देखने में उसे मजा आता। चक्रवाल-सीमा के परे जो हैं उन लोकों का भी दर्शन करने की बड़ी लालसा थी उसे। इन भावनाओं में डूबकर जब वह वृक्ष की ऊंची डाल पर खड़ा होता तब नीचे खड़ी सुहरा उससे पूछती—"मक्का देख रहा है, छोकरे?"

मजीद इसके उत्तर में विशाल मेघ-विस्तार को छूते हुए उड़ने वाले गरुड़ पक्षियों का गान कहलानेवाली ये पंक्तियां मधुर स्वर में गाने लगता—"मक्का भी देखा···मदीना का मस्जिद भी देखा···"

4

सुहरा के कनछेदन में मजीद शामिल हुआ, पर बहुत दर्द सहता हुआ और छिपकर।

मजीद सुन्नत के बाद बिस्तर पर था। छुट्टियों के दिन थे। उसका सुन्नत संस्कार सारे गांव में धूमधाम मचानेवाला था। गैस की रोशनी में बैंड-बाजों आदि के साथ हाथी पर बैठाकर उसका जुलूस निकाला गया था। बाद में एक बड़ी दावत हुई थी। हजारों लोग भोजन के लिए बुलाये गये थे। भोजन के पहले ही सुन्नत सस्कार किया जा चुका था।

दिन भर मजीद बहुत डरता रहा—कोई चीज काट ली जायेगी। पर क्या? उससे आदमी मर जाता है? डर से वह कांपता रहा। उसे लगता था कि वह शाम तक जिंदा नहीं रहेगा। क्या होगा उसे कुछ मालूम नहीं था। मुसलमानों में सभी

पुरुषों की सुन्नत हुई है। जिसकी सुन्नत न हुई हो ऐसा कोई भी नहीं है। फिर भी उसने सुहरा से पूछा—"यह सुन्नत कैसे की जाती है?"

सुहरा को कोई जानकारी नहीं थी। वह इतनी सांत्वना भर दे सकती थी कि कुछ भी हो, मरेगा नहीं। तब भी मजीद बहुत घबराता रहा।

'अल्ला हु अकबर'—यह तकबीर गंभीरता से मंडप में गूंज उठी। इसके बाद मजीद के अब्बा ने उसे हाथ पकड़कर एक छोटे-से कमरे में ले जाकर छोड़ दिया। वहां एक ऊखल उलटी डालकर उसपर सफेद कपड़ा बिछा रखा गया था। उसके सामने एक ऊंचा शमादान रखा था, जिसमें ग्यारह बत्तियां जल रही थीं। कमरे में नाई उस्मान के अलावा दस-बारह लोग और थे। उन्होंने मजीद की कमीज उतारी, सब कपड़े उतार दिये। जन्म-काल की पोशाक में ही उसे उस ऊखल पर बैठाया। अचंभे की बात है। ये लोग क्या करनेवाले हैं?

मजीद की आंखें बांध दी गयीं। सिर, हाथ और पैर लोगों ने जोरों से पकड़ लिये। वह हिल नहीं सकता था। चारों ओर गूंजनेवाली 'अल्ला हु अकबर' तकबीर के अलावा और कुछ भी सुनायी नहीं देता था। इस सब गड़बड़ी में उसकी दोनों जांघों के मिलने की जगह पर एक हलका-सा दर्द महसूस हुआ—केवल क्षण भर के लिए। उसके बाद तुरंत ही पानी का छिड़काव, एक जलन, आग में पड़े जैसी तिलमिलाहट!

मजीद को लिटा दिया गया। सर और पैरों के नीचे तकिये रख दिये गये। इस सब गोलमाल के बीच उसने देखने का प्रयत्न किया। वह स्थान लाल स्याही में अंगुली डुबाई जैसा नहीं दीख पड़ा। ऐसा दिखाई पड़ा जैसे अंगुली स्याही में न डूबी हो, पर शीशी के मुंह से अंगुली के चौतरफा स्याही का घेरा बन गया हो। लेकिन वहां जो दिखाई दिया वह स्याही नहीं थी, वहां से निकला हुआ खून था। अगले दिन इतनी बात उसने सुहरा से कही।

खिड़की के बाहर से सुहरा ने पूछा—"मजीद को डर लगा था?"

"मुझे?" उसी तरह पड़े हुए मजीद ने डींग मारी—"मुझे डर-वर कुछ नहीं लगा।"

उस समय सुहरा ने अपने कनछेदन की बात कही। दस-बारह दिनों में उसके कान छेदे जायेंगे। "मजीद तो नहीं आ सकेगा?"

मजीद ने कहा—"मैं आऊंगा।"

लेकिन जब वह दिन आया, मजीद हिल नहीं सकता था। पहले सुहरा की अम्मी और बाद में स्वयं सुहरा घर के लोगों को आमंत्रण दे रही थी। सो मजीद ने सुना। थोड़ी देर बाद सुहरा को खिड़की के बाहर देखा भी। उत्कंठा से उसका मुख पीला पड़ गया था। परंतु आंखें चमक रही थीं। "आज मेरे कान छिदेंगे!"

मजीद चुपचाप मुसकराया। उस मुसकराहट की छवि सुहरा के मुख पर भी फैल गयी। मजीद ने अब उसकी सुंदर कान-पट्टियोंकोदेखा। उसे आश्चर्य हुआ—"उनमें छोटे-छोटे छेद करेंगे तो दुखेगा नहीं?"

सुहरा ने कहा—"जानना मुश्किल नहीं। आ के देख लेना।" और वह भाग गयी।

मजीद को जाने की इच्छा हुई, पर बिस्तर से उठने की ताकत नहीं थी। फ़िर भी थोड़ी देर बाद मौका पाकर, कोई देख नहीं रहा था ऐसे समय पर, वह उठ खड़ा हुआ। शरीर ऐसा भारी मालूम हुआ जैसे कोई भारी पत्थर रखा हो। हजार घावों का जैसा दर्द था। सब-कुछ मानो छाती से, हृदय से लटक रहा हो। पैर दूर-दूर रखकर वह चालाकी से बाहर निकला। गली से खिसक-खिसककर पिछवाड़े के दरवाजे से सुहरा के घर पहुंच गया। वहां भीड़ या धूमधाम कुछ नहीं दिखलाई दी। उसने सोचा—अमीर नहीं हैं, इसीलिए। अमीर होते तो बाजा-गाजा, आतिशबाजी, दावत—सब-कुछ होता।

मजीद को देखते ही सुहरा की मां जोर से पुकारती हुई दौड़ी—"मेरे बेट, तुम यहा क्यों आ गये?"

मजीद ने मुश्किल से कहा—"कनछेदन देखने के लिए।"

तबतक सुहरा भी पहुंच गयी। उसका मुंह लाल हो रहा था, आंखें डबडबाई हुई थीं। दोनों कानों में ऊपर से नीचे तक छेद करके काले धागे पिरो दिये गये थे। दायें कान में ग्यारह छेद थे, बायें में दस। एक-एक करके सब छेद सूख जायेंगे तब धागे निकालकर उनके स्थान पर चांदी की हलकी बालियां पहना दी जायेंगी। फिर जब शादी होगी तब चांदी की बालियां निकालकर सोने की पहनायी जायेंगी। यह सब मजीद जानता था।

मजीद ने सुहरा से पूछा—"बहुत दुखा?"

सुहरा ने दर्दभरी मुसकान से कहा—"थोड़ा-थोड़ा।"

इतने में मजीद को खोजते हुए उसके लोग वहां आ गये। उन्होंने उसे उठाकर

घर ले जाकर लिटा दिया।

इस घटना से कुहराम मच गया। मजीद को उसके अब्बा ने डांटा। मजीद की अम्मी को भी डांट-फटकार सुनायी। सुहरा के अब्बा और अम्मी को गालियां दीं। इस प्रकार वह प्रसंग खत्म हुआ।

सुहरा से पहले अच्छा हुआ मजीद। उस दिन उसे नहलाकर नये कपड़े पहनाये गये, इत्र लगाया गया, और सजा-धजाकर बड़े आडंबर के साथ मस्जिद में ले जाया गया।

सुहरा ने यह सब आडंबर देखा तो मजीद को चिढ़ाकर कहा—'ओह! छोकरे का रोब! मानो शादी करने जा रहा था।"

5

उस साल सुहरा और मजीद दोनों गांव के मदरसे के आखिरी दर्जे में पास हो गये। सुहरा शहर के मदरसे में जाकर आगे पढ़ना चाहती थी। परंतु उसकी इस इच्छा को चकनाचूर कर देनेवाली एक दुर्घटना हो गयी। सुहरा पितृहीन हो गयी। मजीद ने पहली बार मृत्यु को सम्मुख देखा।

इस दुर्घटना से सुहरा, उसकी दो छोटी बहनें और मां अनाथ हो गयीं।

सब मिलाकर उनकी संपत्ति थी—एक छोटा-सा घर और उसके साथ की थोड़ी-सी जमीन। उसके अब्बा सुपारी बेचते थे और उससे जो कमाई होती थी उसी से परिवार का पालन करते थे। सफेद टोपी, लाल मिट्टी से सनी हुई धोती और उत्तरीय ही उनकी पोशाक थी। काली दाढ़ीवाले गोरे गोल चेहरे में उनकी काली आंखें सदा मुसकराती रहती थीं। बोरा बगल में दबाकर थोड़ा-सा आगे झुककर वे चलते थे। घर-घर से सुपारी खरीदकर, बोरे में भरकर और अपने सर पर रखकर शहर ले जाते और वहां बेच आते थे। बहुत बोलनेवाले थे वे। जिस-जिस जगह जाते और वहां जो-जो देखते, सब लौटने पर मजीद को

सुनाया करते थे। वे कहते—सच्चे मुसलमान बाहर ही हैं। इस गांव में जो हैं, सब अंधविश्वास वाले हैं। और कठोर दिलवाले। अच्छे लोगों को देखना हो तो बाहर ही जाना चाहिए। यहां के लोग सोचते हैं कि हम ही सच्चे मुसलमान हैं। ज्ञान नहीं है, यही दोष है। अल्लाह की मिहर से तुम लोग सब पढ़-लिखकर बड़े होगे तब यह सब हालत बदल जायेगी।

सुहरा को बड़ी-बड़ी परीक्षाएं पास कराना ही उनकी सबसे बड़ी अभिलाषा थी।

"और···" वे कहा करते—"वह बड़ी नौकरी करेगी तब हम सबको भूल जायेगी। यह कहने में उसे शरम लगेगी कि ये मेरे अब्बा हैं।···"

"सच है," मजीद कटाक्ष करता हुआ समर्थन करता—' सुहरा बड़ी रोबवाली है।"

तब दरवाजे के पीछे छिपकर खड़ी सुहरा आंखें फाड़कर, दांत किरकिराती हुई जरा डरावना रूप दिखाती और ओंठ हिलाकर बिना आवाज निकाले कहती —"जरा बड़ा एक !"

इस तरह के प्रसंगों में मजीद उसे एक विशेष रीति से सजा दिया करता। उसके पास सदा एक गुलेल रहा करती थी। उसे वह निकालता,उसमें एक छोटा-सा गोल पत्थर लगाकर सुहरा के पैर पर मार देता।उसका निशाना कभी चूकता नहीं था। पैर में लग जाने पर कहता—"उस दरवाजे पर लगे चूने के दाग पर मारा था मैंने।"

सुहरा अपनी जगह से हटती नहीं। उसकी आंखों से एक-दो बूंद आंसू भर टपक पड़ते। उसकी अम्मी को यह सब मालूम न पड़ता। वे मजीद से कहतीं—"तुम निशाने लगा-लगाकर हमारे मटके-बर्तन सब फोड़ डालोगे, मजीद ! तुम लोगों जैसा पैसा तो है नहीं हमारे पास !"

"ओह ! आगे मैं निशाना-विशाना लगाने नहीं आऊंगा। मैं इस गांव को छोड़कर जा रहा हूं।"

'कहां जाओगे ?"

"छह महीने के फासले से भी दूर !"

"फिर," सुहरा कहती—"शाम को घर लौट आयेंगे।"

मजीद के बारे में सुहरा का खयाल यह है। पर सुहरा के बारे में मजीद ऐसा

कुछ नहीं सोचता। वह कहता—

"फिर ? फिर मैं सारी दुनिया घूमकर लौटूंगा। तब सुहरा किसी बड़े ओहदे पर होगी। तब ये बीबीजी मुझे देखकर पहचान का भाव भी नहीं दिखायेंगी।"

सुहरा के मुख पर एक हलकी-सी मुसकराहट खेल जाती—मानो उस संतोष भरे दूर भविष्य को उसने अपनी आंखों से देख लिया हो। बहुत सोचने के बाद वह कहती—"लड़का ही तो पढ़-लिखकर बड़ी नौकरी पाने जा रहा है। हमारे पास तो उसके लिए पैसा ही नहीं है न ?"

तब सुहरा के अब्बा कहते—"पैसा-वैसा तो सब अल्ला देगा। हम तीनों आया करेंगे शहर के मदरसे से वापस। रोज सुपारी बेचने के बाद मैं स्कूल के दरवाजे पर आकर खड़ा हो जाया करूंगा।"

लेकिन यह सब कुछ नहीं हुआ। सुहरा के अब्बा बरसात में भीगकर घर आये। दो-तीन दिन बुखार में पड़े रहे। तीसरे दिन शाम को उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। मृत्यु-शय्या के पास मजीद भी था। बुझ गयी दीप-शिखा के धुए से काले पड़े कांच के समान ये दोनों आंखें! ···प्रकाश और उष्णता दोनों न रहने से निश्चल बना वह शरीर!

दूसरे दिन शव-संस्कार हुआ। उस शाम को भी मजीद रोज के समान सुहरा की प्रतीक्षा में आम के पेड़ के नीचे खड़ा था। सुहरा शोक-भार से मानो झुकी हुई मजीद के पास आयी। मजीद ने जैसे ही उसके मुख की ओर देखा, वह रो पड़ी। मजीद भी कुछ बोल नहीं सका। उसके आंसू सुहरा के सर पर और सुहरा के आंसू उसके वक्ष पर गिर-गिरकर बहते रहे।

उस समय अंधकार में डूबे दो नारियल के पेड़ों के ऊपर चांद का एक टुकड़ा चमक रहा था।

6

सुहरा ने अपने घर की देहली पर खड़े-खड़े देखा कि मजीद को उसके अब्बा शहर की पाठशाला में भरती कराने ले जा रहे हैं। दोनों के हाथों में छतरियां थीं। मजीद की छतरी नयी थी। उसकी कमीज,लुंगी,टोपी—सब नयी थीं। गांव की सड़क पर दूर पहुंच जाने और दृष्टि से ओझल हो जाने तक वह उसी तरह देखती रही।

उस दिन शाम को शाला से लौटकर आने पर मजीद रोज के समान आम के पेड़ के नीचे हाजिर हो गया। उसके हाथ में नयी किताब थी। उत्सुकता और गौरव के साथ अपनी किताब सुहरा को दिखायी। उसने कहा—"बहुत-से चित्र हैं इसमें।"

सुहरा किताब लेकर पन्ने उलट-उलटकर देखती रही। मजीद ने दो मील दूर उस शहर के अद्भुत दृश्यों का वर्णन किया। फिर अपनी पाठशाला के बारे में कहने लगा—"शहर के बीचोंबीच सात बड़ी-बड़ी इमारतें हैं। सब सफेद पुती हुई, छतवाली इमारतें। यहां के मदरसे जैसा वह मदरसा नहीं है। बड़ा—बहुत बड़ा बगीचा—कितनी तरह के पौधे हैं जानती हो? मैं उन सबके बीज लाऊंगा। हां, फिर खेलने का मैदान—देखने लायक है सब! ···लड़के-लड़कियां कितने हैं, गिनती नहीं। हेडमास्टर सोने का चश्मा लगानेवाले एक मुटल्लू। हाथ में हमेशा बेंत लिये रहते हैं। और, मेरा मास्टर काना है। एक ही आंख है उसकी। हमारे दर्जे में बयालीस लड़के-लड़कियां हैं। उनमें लड़कियां चौदह हैं! ···"

मजीद रुक गया। किताब पर सुहरा के आंसू!

"सुहरा!" मजीद ने पुकारा। सुहरा के आंसुओं का कारण मजीद की समझ में नहीं आया। बार-बार उसने पूछा—"रोती क्यों हो?"

आखिर सुहरा ने मुंह उठाकर धीरे से कहा—"मैं भी पढ़ना चाहती हूं।"

सुहरा पढ़ना चाहती है? इसका क्या उपाय है? मजीद ने बहुत सोचा। झिल्ली की झनकार-सी उसके हृदय में गूंजती रही। अंत में उसने उपाय निकाला—"मैं जो पढ़ता हूं सो रोज सुहरा को बता दिया करूंगा।"

आपस में यह निश्चय करके चले जाने पर मजीद ने एक इससे भी अच्छा मार्ग खोज निकाला। उसके घर में बहुत पैसा है। सुहरा को भी मदरसा भेजकर पढ़ाया

क्यों नहीं जा सकता ? अब्बा से कहने में डर लगता है, अम्मीजान से कहूंगा—उसने तय किया।

उस दिन रात के भोजन के बाद अब्बा पान में चूना लगा रहे थे, अम्मी सुपारी काटने लगी थीं। धड़कते हुए हृदय से मजीद अम्मी के पास जाकर बैठ गया और धीरे से बोला—"अम्मीजान !"

मां ने प्यारभरे स्वर में पूछा—"क्या है, बेटा ?"

मजीद ने दबी हुई जबान में कहा—"हम उस सुहरा को भी पढ़ायें तो कैसा रहेगा ? '

थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। अब्बा ने पान मुंह में दबाया। कटी सुपारी भी मुंह में डालकर चबाना शुरू किया। फिर सोने जैसे चमकनेवाले पीतल के पानदान से एक चांदी की डिब्बी निकालकर खोली। एक रूक्ष सुगंध वहां फैल गयी। डिब्बी से मसाला मिलाकर तैयार की गयी तंबाकू हथेली पर निकालकर फांक ली। सब मिलाकर मुंह में एक ओर दबाकर आंगन में दूर तक थूक की पिचकारी छोड़ी।

"इसमें थूकना काफी नहीं है ?" अम्मी ने थूकदान सामने सरका दिया—"उन पौधों के पत्तों पर खून जैसा गिरा है।"

"किसी की महतारी के पौधे हैं !"—घृणा से कहता हुआ अब्बा आराम कुर्सी में लेट गया। दिन से ज्यादा उजाला फैलानेवाले फानूस की तेज रोशनी में उसके रेशमी कुर्ते में लगे सोने के बटन चमक रहे थे। अब उसकी काली भौंहें चढ़ गयीं। भूरे चमड़े के समान चमकनेवाले माथे में झुर्रियां पड़ गयीं। सोने के चश्मे के गोल कांचों के बीच से उसने घूरकर देखा और फिर मजीद के बारे में अपना मत प्रकट किया—

"अरी ! इसको कहीं भी चला जाने दे। सब दुनिया घूमकर देख आये। हमारे जैसे सब लोग कैसे जिंदगी बिताते हैं, जरा सीखे। क्यों ? समझ में आया ? नहीं !"

"उफ ! फिर शुरू हो गया ! जरा-सा कुछ भी मुंह से निकला कि झट—निकल जाओ। गांव छोड़ के चले जाओ ! हमेशा-हमेशा ऐसा क्यों कहते रहते हो, जरा बताओ तो ?"

"अरी ! इसमें अक्ल नहीं है।"

"औरों को तो अक्ल बहुत है !"

अम्मी के ये ताने ! और क्या अब्बा छोड़ेंगे ?

"अरी ! इसको जो मिली है सो तेरी अक्ल है। समझ में आया ? नहीं।"

"ओह ! आजकल तो मेरी अक्ल खराब हो गयी है ! अल्लाह की मिहर !"

"अरी ! नहीं तो इसको यह बात सूझती ? बोल तो ? मेरे छोटे भाइयों के सब मिलाकर छब्बीस बच्चे, तेरे छोटे भाई-बहनों के सब मिलाकर इकतालीस ! वे सब-के-सब यहां आकर खा-पीकर खत्म करते रहते हैं, तो क्या मैं कुछ बोलता हूं ? नहीं।"

"मेरे रब ! ये कैसी-कैसी बातें हैं !"

"अरी ! तू दस हज़ार रब को पुकार, तो भी क्या तुझे अक्ल आयेगी ? नहीं। मेरी बात तेरी समझ में आयेगी ? नहीं।"

"तो फिर लिखके बता दो न !"

अम्मी के लिए काला अक्षर भैंस के बराबर था। अब्बा ठठाकर हंस पड़े। अम्मी का सफेद सलूका थूक की लाल बूंदों से रंग गया।

"जा यहां से," अब्बा ने हुक्म दिया—"जाकर सलूका बदल आ। समझ में आया ? नहीं।"

अम्मी जाकर सलूका बदल आयीं। अब्बा कहते गये—"लिखना ! तेरे बाप ने सीखा था लिखना ? नहीं। तेरे भाइयों ने सीखा है ? नहीं।"

अम्मी कहां छोड़नेवाली थीं—"तुम्हारे सब लोगों ने तो बहुत सीखा है।"

अब्बा ने उस बात का बहुत देर तक कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने पढ़ना-लिखना नहीं सीखा था। न उनके मां-बाप किसी ने सीखा था। अम्मी ने उस बात की याद दिलायी तो अब्बा को गुस्सा आ गया।

"बहुत बका तो," अब्बा ने गरजकर कहा—"लातें मार-मारकर कचूमर निकाल दूंगा। समझ में आया री ? नहीं।"

अम्मी इसका कोई जवाब देतीं तो झगड़ा हो जाता। पानदान उठाकर आंगन में फेंक देते। अम्मी को पीटते। मजीद को और उसकी बहनों को भी पीटते। इतना ही नहीं, मजीद के सब पेड़-पौधे उखाड़कर फेंक देते। इसलिए अम्मी ने कुछ नहीं कहा।

अम्मी के चुप रहने से अब्बा ने पूछा—"क्यों री ! जीभ अंदर बिला गयी ?

नहीं।"

अम्मी ने बड़ी शांति से पूछा—"यह सब क्यों बोल रहे हो? मजीद नादानी से पूछ बैठा। मगर अल्लाह की और बुजुर्गों की दुआ से हमारे पास काफी पैसा है। अब सुहरा के अब्बा का इंतकाल हो गया है। उन लोगों का कोई नहीं रहा। अगर सुहरा को भी हम पढ़ा दें तो क्या बुरा है?"

मजीद उत्कंठित होकर देखने लगा। अम्मी के कान के और गले के गहने चमक रहे थे।

"हां री! हमारे पास मनमाना पैसा है। मगर क्या वह तेरे बाप ने कमाकर दिया है? या तू दहेज में लायी है?"

"ओहो! शुरू हो गया—दहेज! जैसे यों ही निकाह करके ले आये थे। गिन कर हजार रुपये दिये थे और हाथ में, गले में, कानों में, पैरों में, कमर में लादकर कितने तोले सोना जो दिया था—सब भूल गये।"

"हां हां!" अब्बा ने मूंछों पर ताव देकर कहा—'उसके हजार रुपये। अरी! तेरे जितने तौलकर रुपये देने पर भी तेरी जैसी बे-अकल औरत के साथ कोई शादी करता? क्यों? नहीं।"

"तो अब जाके किसी अकलवाली को ब्याह लाओ।"

"ब्याह लाऊंगा री! जरूर लाऊंगा। मेरे जैसे लायक मर्द को हजार नहीं री! दस हजार देने को लोग तैयार बैठे हैं। समझ में आया? नहीं।"

अम्मी फिर चुप हो गयीं। अब्बा चाहें तो कितनी भी औरतों से शादी कर सकते हैं। अम्मी ने कुछ नहीं कहा, इसलिए अब्बा का गुस्सा बढ़ गया।

"देखा, उसने क्या कहा? हमारे पास मनमानी दौलत है।"

अब्बा ने यह इस भाव से कहा मानो उनके पास एक पैसा भी नहीं है। सच्ची हालत मजीद जानता था। उस इलाके में सबसे ज्यादा अमीर थे अब्बा। एक बार जो नारियल निकलवाते थे उनका पहाड़ खड़ा हो जाता था। एक बार फसल काटकर जो धान लाते हैं उसे भरने के लिए जगह नहीं पूरती। इसके अलावा लकड़ी के व्यापार से भी बहुत मुनाफा होता है। एक बार लकड़ी बेचकर लाये थे। सब सोने की मोहरें थीं। सफेद कागज बिछाकर उस पर ढेर लगाकर फनूस की रोशनी में अब्बा ने गिन-गिनकर थैलियां बांधीं और फिर उन थैलियों को लोहे की तिजोरी में रखकर ताला लगाया। इसके पहले मजीद उन्हें हाथ में

ले-लेकर खेला था। उनका सुनहला चमकीला रंग और मधुर खनखनाहट अब तक मजीद भूल नहीं सका। इतने धनी आदमी एक गरीब लड़की को पढ़ा नहीं सकते ?

अम्मी ने कहा—"नहीं है, यह मत कहो। हमारे पास है। इस गांव में सबसे ज्यादा दौलत हमारे पास नहीं है ? मजीद के लिए जितना खर्च होता है उतना ही तो होगा उस सुहरा को भी पढ़ाने में ? '

अब्बा को गुस्सा आ गया—"देख री ! मैं कहूं कि तुझे अकल नहीं है तो क्या तेरी समझ में आयेगा। ? नहीं। मेरे-तेरे खून से लगे सब मिलाकर कितने हैं, तू जानती है ? नहीं। छब्बीस और इकतालीस मिलकर कितने होते हैं तू जानती है ? नहीं।"

अम्मी ने पूछा—"कितने होते हैं रे, मजीद ?"

मजीद को पसीना आ गया। वह कागज-पेंसिल लेने को भागा।

अब्बा बड़े परिहास के भाव से हंसे और बोले—"वह गया री ! तेरी बुद्धि का जाया।"

मजीद कागज और पेंसिल लेकर लौट आया। उसने 26 के नीचे 41 लिखा और फिर पसीने से तर-ब-तर होकर जोड़ करने लगा। हंसते-हंसते अब्बा ने कहा—सड़सठ। तबतक मजीद भी जोड़ लगा चुका था। उसने भी अपनी सम्मति दे दी—"हां, सड़सठ, ठीक है।"

अब्बा ने गरजकर कहा—"चला जा यहां से।"

और फिर उन्होंने कहा —"सुन री ! वह सुहरा अच्छी लड़की है। काबिल है। फिर भी अगर हम उसको पढ़ाने लगें तो उसके पहले सड़सठ को पढ़ाना चाहिए। इसके लिए काफी दौलत हमारे पास है ?

अम्मी ने जवाब नहीं दिया।

"वह नहीं गया यहां से"—मजीद को देखकर अब्बा फिर चिल्लाये—"चला जा उधर।"

मजीद दुखी होकर चला गया। खिड़की के पास अंधेरे में बैठकर उसने सुहरा के घर की ओर देखा तो हाथों पर मुंह टिकाये, मिट्टी के तेल के चिराग पर टक-टकी लगाये, चिंता में डूबी, बरामदे में बैठी हुई सुहरा दिखाई दी।

7

सुहरा की जिंदगी बिना किसी लक्ष्य के यों ही चल रही थी । ज्यादातर वह मजीद के घर में ही रहती थी । वहां सब लोग उसे प्यार करते थे । फिर भी उसके मुख पर सदा विषाद की छाया पड़ी रहती थी । मजीद की अम्मी अक्सर कहा करती थीं कि कोई भी कारण क्यों न हो, दुखी नहीं रहना चाहिए ।

"मुझे कोई दुख नहीं है"—सुहरा मुसकराती हुई कहती थी । फिर भी वह अपनी आवाज से निकलनेवाला विषाद छिपा नहीं पाती थी। इससे मजीद को भी दुख महसूस होता था ।

वह कहता—"सुहरा की पहले जैसी हंसी देखने के लिए मैं तरस गया हूं ।"

"क्यों ? मेरी हंसी पहले जैसी नहीं है ?" वह जवाब देती ।

"नहीं, इस हंसी में मानो आंसू भरे हुए हैं ।"

"ओह ! शायद मैं बड़ी हो गयी हूं इसलिए होगा ।" थोड़ी देर बाद वह जोड़ देती—"हम सब बड़े न होते तो अच्छा होता ।"

क्या ? बड़े होने से ही दुख और इच्छाएं पैदा हुई हैं ?

वे बच्चे थे । बिना जाने ही बड़े होते गये । सुहरा की छातियां बढ़ गयीं, बाल बढ़ गये, वह युवती हो गयी । और मजीद छोटी-छोटी मूछोंवाला एक युवक बन गया ।

अपने भविष्य के बारे में सुहरा के दिल में भय है । बहन, मां और वह स्वयं अनाथ हैं । पिता की मृत्यु के बाद कुटुंब के पालन का भार उसके सुकुमार कंधों पर आ पड़ा है ।

उसकी उम्र केवल सोलह साल है । तो भी परिवार का संरक्षण करने की जिम्मेदारी उस पर है । मजीद की मां से मदद कब तक कहां तक लेती रहे ? दूसरों के अहसान से जीवन निभाना । वहां केवल मजीद ही होता तो शायद बात इतनी न खलती ।

मजीद के अब्बा, अम्मी या बहनों के प्रति सुहरा के दिल में कोई बुरी भावना नहीं है । परंतु मजीद के प्रति जो भावना है वह उनके प्रति महसूस नहीं होती । मजीद जब सामने होता है तब उसे कोई क्लेश नहीं होता, परंतु जब वह नहीं होता तब उसके मन पर सब-कुछ बीत जाता है । मजीद सुबह शाला चला

जाता। शाम को जब तक वह लौटता नहीं उसे लगातार घबराहट महसूस होती रहती। मजीद की तबीयत जरा-सी बिगड़ जाती तो सुहरा को रात भर नींद न आती। सदा उसके पास बैठी रहना चाहती—दिन-रात सेवा करती रहना चाहती।

उसकी सेवा करने की जो यह आतुरता थी उसके अनुकूल ही मानो इस बीच एक घटना हो गयी। शहर के स्कूल में पढ़ने जाने के चौथे साल में मजीद के दायें पैर के तलवे में कोई जहरीला पत्थर चुभ गया। जब वह स्कूल से लौट रहा था, उसके पैर में दर्द होने लगा। लंगड़ाते हुए चलकर वह घर पहुंचा। दूसरे दिन तलवा एक जगह पका जैसा दिखलाई पड़ा। सारे शरीर में झुनझुनाहट और दर्द महसूस होने लगा। मजीद पलंग पर पड़ा-पड़ा कराहता था। सब कहने लगे, फोड़ा फूटने पर दर्द कम होगा। परंतु कोई पास भी फटकता तो मजीद कुहराम मचा देता।

उसके आसपास सदा भीड़ बनी रहती। जब बीमारी को देखनेवालों की भीड़ न होती तब अपूर्व अवसर पाकर सुहरा उसके कमरे में चली जाती। वह मजीद के पैरों के पास बैठकर उस पके हुए स्थान पर मुंह से फूंकती रहती। तलवे में पके हुए अमरूद की तरह गोल-गोल, पीला-पीला फोड़ा चमक रहा था। उसका दर्द मजीद से सहन न होता था। उसने व्याकुल होकर कहा—"सुहरा, मैं मर जाऊंगा।"

उसके लिए क्या किया जाये, समझ में नहीं आ रहा था। उसे भी रोना आ गया। वह मजीद के दायें पैर के तलवे को अपने गाल में लगाकर बैठ गयी। फिर तलवे को दबाकर उसने उसे चूम लिया।

प्रथम चुंबन!

वह उठकर मजीद के गरम-गरम माथे पर हाथ फेरती हुई उसके मुख के ऊपर झुकी। उसके बाल खुलकर मजीद की छाती पर फैल गये। उसका निःश्वास मजीद के मुंह को छूने लगा। किसी बिजली की शक्ति ने मानो नाड़ियों को कंपा दिया। चुंबक से आकृष्ट लोहे की तरह मजीद का मुंह जरा ऊपर उठा। दोनों हाथ सुहरा के गले में माला की भांति लिपट गये। उसने उसे अपनी छातीसे लगा कर दबा लिया।

"सुहरा!···मेरी जान!···"

सुहरा के लाल अधर मजीद के होठों से लगकर दब गये। जन्म से मौजूद होने पर भी अब पहली बार जागे हुए विकारों से प्रेरित होकर वे दोनों एक हो गये। परस्पर हजार-हजार चुंबन अर्पित किये। आंखों में, माथे में, गालों में, गले में, वक्षस्थल में — सारा शरीर कांप उठा। एक प्रकार की सुखदायक तंद्रा! और एक नया आश्वास। कुछ हुआ, वह क्या?

"फोड़ा फूंट गया"—मंद हास के साथ सुहरा ने कहा। एक दिव्य संगीत सुना जैसे मजीद ने। वह उठ बैठा। अद्भुत! फोड़ा सचमुच फूट गया था। लज्जा से नम्र हुए सुहरा के प्रेमार्द्र मुख की ओर उसने देखा। प्रवाल जैसे उन अधरों का माधुर्य! उन प्रथम चुंबनों की मादकता!

दायें पैर के तलवे में जहां सुहरा ने चूमा था, एक अनिर्वचनीय शीतलता।

उस रात सुहरा सो नहीं सकी। सब-कुछ गरम हो गया, एकदम पिघल गया।

सुहरा की ज़िदगी में एक लक्ष्य है। लेकिन उसकी सफलता के बारे में सोचने में भी उसे डर लगता है।

एक अजीब अनिश्चितता में उसके दिन और रातें बहने लगीं।

8

सुहरा मजीद को प्यार करती है। मजीद भी सुहरा को प्यार करता है। यह बात दोनों जानते भी हैं। स्नेह-वलय के बीच में है मजीद। फिर भी, ऊर्जस्वल चिंतागति और उत्कृष्ट आशय-समूह उसकी नियामक शक्तियां हैं। स्वाभिमान का वह सत्व है। अपने को वह बहुत-कुछ समझता है। उसकी जिंदगी उसके पिता की दुनिया में नहीं है। घर के किसी विषय में वह कुछ भी नहीं जानता। अपने अब्बा से कुछ बातचीत करने में भी उसे डर लगता है।

अब्बा किसी की सम्मति लिये बिना ही सब काम अपने मन के राजा की तरह स्वयं कर लेते थे। मजीद को जिस वस्तु की आवश्यकता होती, अपनी अम्मी से

मांग लिया करता था। अब्बा की आवाज सुनने पर भी मजीद के मन से विरोध का नीरव गर्जन निकल पड़ता था। किसके प्रति विरोध, सो मजीद को स्वयं नहीं मालूम। अच्छे पिता नहीं हैं वे ? मजीद के लिए वे क्या नहीं करते ? तो पिता के रूप में उनमें क्या दोष है ?

अपने अब्बा से अधिक स्नेह और आदर मजीद के मन में सुहरा के अब्बा के लिए था। सुहरा अपने अब्बा से कभी न डरती थी। उनके बारे में बातें करने लगती तो उसकी आंखें भर आती थीं। परंतु यदि मजीद के अब्बा चल बसें तो क्या मजीद रोयेगा ? अम्मीजान जायेंगी तो जरूर-जरूर उसको बहुत रोना आयेगा।

चाहे जो हो, उस घर में रहना मजीद पसंद नहीं करता था। ज्यादातर घर के बाहर रहता, या फिर अपने ही कमरे में। इसी तरह उसका समय बीतता था। इसी बीच एक बड़ी घटना हो गयी।

मजीद उस समय शहर की पाठशाला के आखिरी दर्जे से एक दर्जा नीचे पढ़ रहा था। फसल काटना और समेटना शुरू हो गया था। गर्मी भयंकर थी। और रोजे के दिन भी थे। अब्बा दिन भर भूखे रहते, पानी भी न पीते, थूक भी न निगलते—ऐसी हालत में वे छोटे-से काम के लिए भी तेज पड़ जाते थे।

एक दिन सुबह खेती पर जाने के पहले अब्बा ने मजीद से कहा—"धान काट कर सुखा लिया गया है। उसे नाव में भरकर लाना है। साथ मालिक न हो तो नाववाले चुरा कर बेच लेंगे। तू तो रोजे नहीं रखता न ? मदरसे से लौटते ही खेत पर आ जाना। आयेगा ? नहीं।"

मजीद ने कहा—"आ जाऊंगा।"

पर वह गया नहीं। रोज के जैसा स्कूल से आते ही खेलने के लिए निकल गया। शाम को रोजा तोड़ने के समय अब्बा नहीं दिखे। तब मजीद को याद आयी। अब्बा बहुत रात होने पर लौटे। मजीद को देखते ही वे गरज उठे। भीषण क्रोध के साथ उसके गाल पर जोर से एक तमाचा मारा—चटाक् ! मजीद चक्कर खा गया। सर के अंदर मानो हजारों जुगनू उड़ने लगे। बाद में अब्बा ने उसे खूब मारा—"या तो तू सुधरेगा, या मरेगा। समझ में आया ? नहीं।" मारने की आवाज सुनकर अम्मी दौड़कर आयीं और उन्होंने मजीद को हाथों से घेर लिया।

"बस भी करो! समझ में आने जितना ही पीटना काफी नहीं होता?" अम्मी ने कहा।

"जा री, उधर!" अब्बा ने गरजकर कहा—"तूने सुना नहीं?" फिर उन्होंने अम्मी को भी मारा। बहनें रोती-कलपती आयीं तो उनकी भी खबर ली। दरवाजा तोड़ डाला। बर्तनों को फेंक-फेंककर फोड़ दिया। इस सबके बीच मजीद स्तब्ध खड़ा था।

"जा रे, निकल जा! सब दुनिया घूम के कुछ सबक सीख के आ! समझ में आया! नहीं।"—चिल्लाकर अब्बा ने कहा और गले के पीछे धक्का देकर उसे आंगन में गिरा दिया। मजीद के होंठ कट गये और खून बहने लगा। वह उठकर खड़ा हुआ तो अब्बा ने फिर गरजकर कहा—"जा, निकल जा!"

मजीद को दुनिया के दूसरे छोर तक दौड़ाने के लिए काफी थी वह बात। वह वहां से निकल गया। देहली के बाहर जाकर बैठा। रो नहीं सका—उसकी आंखों में एक बूंद आंसू भी मानो नहीं था। जोरदार विरोध का तूफान उठ रहा था उसके हृदय में। मनाने या थोड़ी-सी सांत्वना देने के लिए भी कोई नहीं गया उसके पास।

घर के अंदर एक मूकता छाई हुई थी। फानूस चौतरफ उज्वल प्रकाश फैला रहा था। तो भी वहां कोई हलचल नहीं थी, मानो किसी की मृत्यु हो गयी हो।

विशाल लोक में वह अकेला था। घर-बार छोड़कर कहीं चले जाने का उसने निर्णय कर लिया था। पर जाये कहां? हाथ में एक पैसा नहीं। सिर्फ अपना शरीर ही है। जीऊंगा कैसे? खैर, जवान तो हूं। जाऊंगा।

वह चला गया।

पहले वह सुहरा की ओर चलने लगा। उस आम के पेड़ के नीचे, जहां हमेशा दोनों बैठते थे, उसी जगह पर उस अंधकार के एकांत में वह खड़ा रहा।

दूर सुहरा का मनोहर कंठस्वर गूंज रहा था। मिट्टी के तेल के दीये के सामने बैठी वह कुरानशरीफ पढ़ रही थी। बीच में सर उठाकर उसने उस पेड़ की तरफ देखा। आंखें निश्चल हो गयीं—मानो कुछ सुन रही थी। सुनहला प्रकाश फैलानेवाले उसके कपोल चमक उठे। खून टपकाते जैसे उसके होंठ जरा से खुले।

थोड़ी देर इसी तरह बैठे रहकर उसने फिर पढ़ना शुरू कर दिया।

"सुहरा!" मजीद ने पुकारा। पर उसके होंठ बंद थे। सचमुच पुकारा हृदय

में। जोर से पुकारना चाहा—आखिरी विदा लेने के लिए। पर नहीं। वह चल पड़ा पागल के समान। गांव को छोड़कर, शहर को भी पार करके वह चला गया। जंगल, पहाड़ और नगर पीछे छोड़कर वह चला गया।

सात साल वह घूमता रहा। लंबे सात संवत्सर! इस बीच घर में क्या-क्या हुआ, सुहरा की ज़िंदगी में क्या परिवर्तन हुआ—यह कुछ भी उसे मालूम नहीं पड़ा। उसने कोई पत्र नहीं लिखा। इसलिए नहीं कि वह कुछ जानना नहीं चाहता था। फिर भी नहीं लिखा। घर से खोजता हुआ कोई आ जाये तो···?

उसने पर्यटन किया। पैदल चलकर, वाहनों में, भिखारियों के साथ, गुसाइंयों में शामिल होकर, संन्यासियों का चेला बनकर, होटलों में चाकरी करके, दफ्तरों में गुमाश्ता बनकर, राष्ट्रीय आंदोलनकारियों के साथ, धन-कुबेरों के अतिथि के रूप में—इस तरह कई रूपों और कई वेशों में उसने जीवन-यापन किया। कई धर्मवालों से उसका परिचय हुआ।

उस समय पैसा कमाने की उसे इच्छा नहीं थी। उपलब्ध सुविधाओं का उसने उपयोग नहीं किया। देखना, जानना सीखना—यही उसका लक्ष्य था।

उसने देखे छोटे-छोटे गांव और बड़े-बड़े शहर; छोटे-छोटे झरने और लंबी-चौड़ी नदियां; छोटी-छोटी पहाड़ियां और विराट् पर्वत-श्रेणियां; धूल और मिट्टी से भरी कृषि-भूमि और सफेद रेत से भरी विशाल मरुभूमि—इस प्रकार हज़ारों मील का चक्कर उसने लगाया। क्या देखने? क्या सुनने?···

मनुष्य सभी स्थानों में एक-से ही मिले। भाषा और वेष-भूषा में ही अंतर था। सभी स्त्री-पुरुष पैदा होते, बढ़ते, मिलते, संख्या बढ़ाते और अंत में मर जाते हैं। ब···स! जन्म तथा मृत्यु के बीच की यह कठोर यातना सभी स्थानों में वर्तमान है। तो क्या मृत्यु के साथ सब समाप्त हो जाता है? इस प्रकार विषादात्मक भाव में डूबकर वह अपने गांव के लिए वापस हुआ। किसलिए? सुहरा से शादी करके बाकी ज़िंदगी कहीं चुपचाप शांति से बिताने के उद्देश्य से।

लेकिन उसे स्तब्ध कर देनेवाली बदली हुई परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। अब्बा को बार-बार व्यापार में हानि हुई थी। उससे या किसी ऐसे कागज में अनजाने दस्तखत कर देने से, जिसमें लिखा था कि सरकार से एक बड़ी रकम कर्ज में ली है, या और किसी कारण से हो, अब्बा की सारी संपत्ति कर्जदारों के अधीन हो गयी थी। रहने का मकान भी गिरवी था। अम्मी और अब्बा दोनों

बहुत बूढ़े हो चुके थे। दोनों बहनें शादी की उम्र पार कर चुकी थीं। और··· सुहरा का विवाह हो चुका था। मजीद के गांव पहुंचने के एक साल पहले ही शादी हुई थी। शहर में कहीं रहनेवाला एक कसाई था उसका पति।

सुहरा ने मजीद की राह नहीं देखी। इसलिए मजीद ने यह निष्कर्ष निकाला कि 'जिंदगी स्वार्थमय है।'

कुछ भी हो, पास-पड़ोस के सभी लोग मजीद से मिलने आये। उसकी पेटी, बिस्तर आदि सामान चार-पांच लोग मिलकर लाये थे। यह देखकर सबने सोचा कि उसके पास बहुत पैसा है। पर क्या था? बहुत-सी किताबें और एक दस रुपए का नोट!

पहले-पहल मजीद को सभी जगहों से आमंत्रण मिलते थे। एक-एक घर में दो-दो, तीन-तीन बार आतिथ्य के लिए जाना पड़ा। पेट भरा होता तो भी आग्रह कर-करके खिलाते थे लोग। परंतु एक महीने के अंदर सब ने असली बात जान ली। गरीबी में डूबे हुए इस परिवार का एक गरीब सदस्य ही है वह कंगाल!

"वह किस लिए लौटकर आया?" यह हुआ लोगों का प्रश्न—"सात साल के बाद आया है, मगर खाली हाथ!"

अब उसका स्वागत निंदा-भाव भरी नजर और परिहास भरे वचनों से होने लगा। उसने बाहर निकलना छोड़ दिया। घर के अंदर उसी पहले के कमरे में सदा बंद रहता। उस कमरे से कितनी कहानियां जुड़ी हुई हैं! विद्यार्थी-जीवन में इसी कमरे में रहता था। सुन्नत-संस्कार इसी कमरे में हुआ था। पैर में फोड़ा हुआ था तब भी इसी कमरे में लेटा था। अब इसी कमरे में एक पुरानी आराम-कुर्सी पर बाहर की ओर नजर लगाये वह लेटा रहता।

घर में ठीक तरह खाने को भी कुछ नहीं था। बहनें नारियल की जटाओं से जो रस्सी बना देतीं, अब्बा उसे ही बाजार में बेच आते और जो-कुछ हो सकता, खरीद लाते थे। उसमें से अधिक भाग मजीद को देकर अम्मी कहतीं— 'मेरा बेटा बहुत दुबला हो गया। तुझे कैसे पाला था, जानता है? तेरे रंग की चमक कम है, इसलिए कितना सोना दूध में घिसकर पिलाया, मेरे बेटे!"

मजीद टकटकी लगाये वैसा ही बैठा रहता—क्या करें, हाथ में एक पैसा नहीं, पैसा पाने का कोई उपाय नहीं, मदद करनेवाला भी कोई नहीं।

वह दिन-पर-दिन क्षीण होता गया। मन बहलाने के लिए कोई काम न होने

से फिर वह एक बगीचा लगाने लगा। पर इस बार अकेला ही।

आंगन के बीच में सफेद रेत बिछाकर, चारों ओर उसने पौधे लगाये। एक ओर वह जवाकुसुम का पेड़ था, जिसका पौधा सुहरा ने अपने हाथ से लगाया था। अबतक वह एक बड़ा पेड़ बन गया था। जब वह लौटकर आया था, वह पेड़ फूलों से छाया हुआ था। हरी-हरी पत्तियों के जंगल के बीच मानो खून की बूंदे टपक गयी हों, ऐसे लाल-लाल फूल उस पेड़ पर सदा खिले रहते थे। उसकी छाया में आराम कुर्सी पर पड़ा-पड़ा वह सदा पढ़ता रहता था। परंतु क्या वह सचमुच पढ़ता था? किताब खोलकर गोद में रखे यों ही पड़ा रहता था।

अम्मी पूछतीं—"क्या सोच रहा है, बेटा?"

वह धीमी आवाज में जवाब देता—"कुछ तो नहीं।"

अम्मी भी चिंता में डूब जातीं। फिर अपने-आप कह उठतीं—"सब अल्लाह की मर्जी से।"

मजीद को संतुष्ट करने के लिए उसके प्यारे पौधों को पानी देने में दोनों बहनों के बीच होड़ लग जाती। दोनों आपस में झगड़तीं। आखिर दोनों मजीद के पास जातीं और दोनों अलग-अलग दावा करतीं—"भैया, आज पौधों को पानी मैंने दिया है।" मजीद कहता—"उनमें जो फूल खिलें, दोनों बराबर-बराबर बांट लेना।"

अब्बा कहते—"उसकी उम्मा के पौधे! सारी दौलत नाश करके मैंने उसे पढ़ाया। अब सात साल जहां-तहां आवारागर्दी करने के बाद यह कमायी। इस बुढ़ापे में मेरे आराम करने के लिए यह बगीचा!" और फिर वे पान के पीक की पिचकारी मारते—थू! और कहते—"सब मैं काट-कूटकर फेंक दूंगा। सुना री, मैंने क्या कहा? नहीं।"

अम्मी इसका उत्तर देतीं—"किसी तरह हो, आंगन सब साफ हो गया न?"

अब्बा सूखे पान में जरा-सा चूना डालते हुए पूछते—"नहीं सुना री, मैंने क्या कहा? नहीं।"

"क्या कहा?"

"कहीं से जाकर जरा-सा तम्बाकू का डंठल ले आ।"

अम्मी एक बिता सर पर ओढ़कर फटा, गंदा, सलूका पहने पड़ोस में तंबाकू का डंठल मांगने जातीं।

मजीद के हृदयाकाश में मेघों की तरह स्मृतियां दौड़ती रहतीं। गरीबी एक भयानक व्याधि है। वह शरीर और हृदय को ही नहीं, आत्मा को भी नाश कर डालती है। इस प्रकार शरीर, हृदय और आत्मा नष्ट हुए लाखों स्त्री-पुरुषों को उसने देखा है।

वही चित्र उसके हृदय में पंक्ति बनाकर आ खड़े होते। वही विकृततम-जुगुप्सामय चित्र ही उसे क्यों याद आते ? जीवन प्रकाशपूर्ण सौंदर्य है—तो भी उसके मुख में लिपटी गंदगी और कीचड़ को वह भूल नहीं पाता। जीवन का वैरूप्य ! जीवन की विवशता !

जिनके पास खाने को नहीं, पहनने को नहीं, सोने के लिए थोड़ी जगह नहीं, जो टूटे अंगवाले हैं—ऐसे अनेकानेक हताशों की अनंत घोषयात्रा ! दिन-रात वही वह देखता। सब भूलना चाहता था, पर कैसे भूल सकता था ? सर सदा आग में झुलसता रहता। दिल सदा गद्गद रहता।

सुहरा की याद आते ही आंखों में आंसू भर आते। एक बार उसे देखना चाहता था, परंतु···वह थी दूसरे की स्त्री ! दूर से ही कहीं एक बार देख पाता! शिकायत करने के लिए नहीं, ताने देने के लिए भी नहीं, सिर्फ एक बार देखने के लिए। वह आवाज एक बार सुनने के लिए।

उसने मजीद को भुला दिया। पर मजीद उसको भूल सकता है ? उस पेड़ के नीचे, जो बहुत-से पके फल देकर दोनों को अनुगृहीत किया करता था, रात की विजनता में मजीद जाकर खड़ा रहता। किसी की प्रतीक्षा में नहीं। प्रतीक्षा के लिए रहा ही कौन ?

मजीद ने सोचा—'यदि सुन लेगी कि मैं आया हूं तो फिर सुहरा कभी··· कभी इधर नहीं आयेगी।'

9

सुहरा आयी। मजीद आया है—'सुनते ही वह प्रेम-परवश हो, भागकर आयी। पर मजीद को उससे मिलने का उत्साह नहीं हुआ। वह भग्नप्राय: हो गया था। वह हिल नहीं सका। अत्यधिक थक गया।

'कहां?' सुहरा का प्रश्न और 'बगीचे में'—अम्मी का जवाब, दोनों मजीद ने सुने। उसका दिल धड़क रहा था। वह निश्चल होकर आराम कुर्सी पर पड़ा रहा।

बगीचा सायं-प्रकाश में डूबा हुआ था। फूलों पर भौंरे उड़-उड़कर गुंजार कर रहे थे। सुगंधित मंद पवन पत्तों को हिला रहा था। मजीद शाम की पीली धूप से परिवृत्त होकर मूर्ति के समान पड़ा रहा। सुहरा की पग-ध्वनि पास आती रही।

सुहरा की दुखी आवाज पीछे से आयी—'ओह! नया बगीचा!" मजीद के हृदय में दर्द उठ आया। साधारण दर्द नहीं—नुकीले कांटे मानो अंदर छिदकर रह गये हों। रह-रहकर दर्द तीव्रता से उठता था।

"मुझे पहचानते हो?"

मजीद की आंखें भर आयीं।

उसने फिर कहा—"मुझसे नाराज होगे!"

मजीद ने मुड़कर देखा। उसके हृदय में मानो आग भड़क उठी। एक शब्द भी मुंह से न निकल सका। सुहरा बिल्कुल बदल गयी थी। गाल पिचक गये थे। अंगुलियोंके जोड़ बड़े और कड़ेहो गए थे। नाखून सब घिस गये थे। सारा शरीर पीला पड़ गया था। कानों के छेदों में काले धागे बालों से ढके हुए थे। इस प्रकार उन दोनों ने एक-दूसरे को देखा। बहुत देर तक दोनों कुछ नहीं बोल सके। धीरे-धीरे सूरज छिप गया। अंतरों को नष्ट करनेवाला अंधकार फैला। उन दोनों को इसका कोई भान नहीं हुआ। रहते-रहते, गांव का आलिंगन करनेवाली उस नदी की दो धाराओं को शुभ्रता में डुबाता हुआ पूर्ण चंद्र पहाड़ी के शिखर से झांकने लगा।

गांव की निस्तब्धता को भंग करता हुआ कहीं दूर से एक प्रेम-गान वहां गूंज उठा। किसी एक प्रेमी ने अपनी प्रेयसी की याद में शोक-मधुरिमा से गाया—

"ओ ! रहनेवाली
कमलों की फुलवाड़ी में !
पंचरंगे तोते के जैसे
रंगभरे पंखोंवाली !
फूल जैसा मुखड़ा
तेरा फूल जैसा मुखड़ा···
ललचाता मैं
देख-देखकर जी भरने को, ओ !
समय आयेगा कब वह
जब मैं जीभर के देखूं ?
अथवा आ गयी पास कामिनी ?
काल-दोष अथवा बाधक बन
खड़ा बीच में ?
ओ ! रहनेवाली
कमलों की फुलवाड़ी में ! ···"

वह अज्ञात गायक इसी को दुहरा रहा था।

आखिर मजीद ने भावभीनी आवाज में पुकारा—"सुहरा !"

"ओ !" सुहरा ने मानो भूतकाल के हृदय से उत्तर दिया।

मजीद ने पूछा—"क्या बीमारी थी ?"

उसने कहा—"कुछ भी तो नहीं !"

"फिर इतनी कमजोर कैसे हुई ?"

सुहरा ने इसका उत्तर नहीं दिया। एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर उसने कहा—"परसों ही मुझे पता चला···आये हैं।"

जरा रूठकर मजीद ने कहा—"शायद सोचा था कि मैं कभी लौटकर नहीं आऊंगा ?"

"सभी ने ऐसा ही सोचा था। पर मैं···"

"हूं···?"

"मुझे भरोसा था, वापस आयेंगे।"

"तो फिर···?"

"सब लोगों ने तय कर लिया। मेरी सम्मति किसी ने ली ही नहीं। अम्मीजान आग में भुन रही थीं। मेरी हमउम्र वालियों की शादियां होकर बरसों बीत गये थे। सोना और दहेज दिये बिना मुझे कोई···"

"दहेज और सोने के गहने मांगे बिना सुहरा से शादी करने के लिए तैयार होनेवाला एक भी व्यक्ति नहीं है—ऐसा सुहरा ने विश्वास कर लिया। क्यों ?"

"मुझे भरोसा नहीं था, ऐसी बात ही नहीं। एक क्षण के लिए भी मैं भूली नहीं थी। रात और दिन मैं याद कर-करके रोती रही। कोई कठिनाई, कोई बीमारी न हो, ऐसी मैं दुआएं मांगती रहती थी—रोज-रोज दुआएं मांगती थी।"

"मैं सुहरा को भूल गया, सुहरा ने यही सोचा था न ?"

"ऐसा मैंने नहीं सोचा। पर खत क्यों नहीं भेजा ?"

"बस ! नहीं भेजा ! कई बार लिखा, पर भेजा नहीं !"

"रोज मैं खत की राह देखती। आज आयेगा, कल आएगा, यही सोचती रही।"

"तो यह शादी···?"

"मैंने कहा न ! मुझसे किसी ने नहीं पूछा। और एक बोझ बनकर मैं कब तक रहती ? मैं तो औरत हूं न ?"

"···?···"

"आखिर घर और जमीन गिरवी रखकर सोना आदि दिया और शादी कर दी।"

"तो फिर इतनी कमजोर हुई सो ?"

सुहरा चुप रही।

"कहो सुहरा ! क्यों कमजोर हो गयी ?"

"चिंता से।"

"क्या चिंता ?"

"···हूं···!"

"सुहरा !"

"ओ !"

"कहो न ?"

सुहरा फूट-फूटकर रो पड़ी। फिर धीरे-धीरे अपने पति के बारे में बोली—

"बहुत गुस्सावाले हैं। उनके एक और स्त्री और दो बच्चे हैं। मैं घर आकरआग्रह के साथ अपना हिस्सा ले आऊं, इसके लिए हमेशा ही मुझसे कहते रहते हैं। मेरी छोटी बहनें हैं न? मैं क्या कर सकती हूं? जब मैं ना कहती हूं, मुझे मारते हैं। एक बार मेरी नाभि में लात मारी। मैं उलटी गिर पड़ी। उस दिन ये दांत टूट गये, देखो—"

उसने मुंह खोल कर दिखाया। दांतों की सफेद पंक्तियों के बीच खाली जगह?

"सुहरा!"

"ओ!"

"फिर?"

"वहां जाने के बाद एक दिन भी पेट भर के खाया नहीं। एक क्षण के लिए भी मन में शांति का अनुभव नहीं किया! मैं पत्नी नहीं हूं, सिर्फ एक नौकरानी हूं। नारियल के छिलके कूट-कूटकर उसकी मजदूरी का पैसा लाकर देना पड़ता है मुझे। पैसे कम होते हैं तो मार पड़ती है। मुझे कुछ भी देते नहीं। जब महीने के कारण बाहर थी···"

"···ऊं···!"

"लगातार चार दिन···"

"ऊं···?"

"भूखे रहना पड़ा!"

इसी तरह सुहरा सब कहने लगी। कहने के लिए बहुत था। बहुत-से रहस्य थे उसके दिल में। उसने कहा—"कई बार मर जाने की इच्छा हुई। पर एक ही आशा से जिंदा रही—एक बार आके देखने के बाद मरूं!"

"मृत्यु की बात सोचकर अब मन को खराब मत करना। जिंदगी और आगे भी है। भरोसा रखो। एक सुंदर भविष्य सामने है।"

मजीद के यह कहने पर सुहरा एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर रह गयी। वह कुर्सी के सामने मजीद के पैरों के पास बैठी थी। बहुत देर तक कुछ बोले बिना ही दोनों उस चांदनी में डूबी दुनिया को देखते रहे। आखिर मजीद ने कहा—"सुहरा, जाकर खाना खाओ। शांति से सोओ। कल फिर मिलेंगे।"

"मुझसे अब कुछ नहीं होता"—सुहरा उठ खड़ी हुई।

"इतनी थकान ?" मजीद भी उठा।

"मन की विषमता !"

"मन खराब न करो। जाकर आराम से सोओ।"

"कल कहीं जायेंगे ?"

"नहीं।"

"मैं सुबह आऊंगी"—सुहरा चलने लगी।

"हां"—मजीद ने सहमति दी।

सुहरा चांदनी में डूबे नारियल के पेड़ों के बीच से जा रही थी। मजीद उसको देखता हुआ फिर से आराम कुर्सी पर बैठ गया।

हाथ में छोटी-सी चिमनी लेकर अम्मी आ पहुंचीं। मजीद को थका हुआ पड़ा देखकर प्यारभरी आवाज में मां ने पूछा—"क्यों ऐसे पड़ा है, बेटा ! तू ?"

"कुछ नहीं।"

"बेटा ! देखो उस सुहरा की हालत ? कैसी तोते जैसी लड़की थी !···सब रब की मर्जी !"

मजीद को गुस्सा आया, दुख भी हुआ। "उसको किसने ऐसा बना दिया ?"

"बेटा ! आकर कुछ खा-पीकर सो जाओ। तुम सोच-सोच कर दुख न करो ! सब अल्लाह ठीक करेगा।"

मजीद उस रात को सोया नहीं। सुहरा भी नहीं सो सकी। उनके बीच जमीन और झरने हैं। दो बड़ी-बड़ी दीवारें भी हैं। फिर भी वे दोनों सोये नहीं। भविष्य के बारे में सोचते रहे।

"भविष्य !"

सुहरा का भाव शीघ्रता से बदल गया। अंदर एक नया प्रकाश, मुख पर लालिमा और आंखों में चमक ! बालों को बीच से सीधी मांग निकालकर पीछे आकर्षक ढंग से बांध लेती। पड़ोस की औरतें आश्चर्य के साथ कहतीं—"सुहरा आयी तब से अब बहुत अच्छी हो गयी है। वापस जायेगी तो उसका आदमी पहचानेगा नहीं।"

आदमी !

वह सदा मजीद के घर में रहती। पौधों को पानी देने का वह भी ध्यान रखती। मजीद की बहनें कहतीं—ये सब पौधे हमने ही लगाकर, पानी देकर पोसे हैं।

सुहरा उस जवाकुसुम के पेड़ के बारे में पूछती—"इसको भी ?"

"यह तो पहले से ही यहां था।"

सुहरा कुछ प्रतिरोध न करती। सब-कुछ पहले से वहां था ही !

एक दिन मजीद ने उससे पूछा—"सुहरा, कब जाओगी ?"

सुहरा की समझ में न आया। उसने आश्चर्य के साथ पूछा—"कहां ?"

"अपने पति के पास।"

"ओह !" उसका चेहरा उतर गया। "उन्होंने शादी मेरे साथ नहीं की थी।"

"तो ?"

"मैं अपने साथ सोने के जो गहने ले गयी थी उनसे और मेरे हिस्से की संपत्ति से की थी। गहने उन्होंने बेच खाये। अब जो है वह मेरे हिस्से की संपत्ति। वे जानते हैं कि उसके मिलने का कोई उपाय नहीं है"—सुहरा ने उत्तर दिया।

फिर उसने थोड़ी देर बाद जोड़ दिया—"लेकिन अगर मुझे देखना लोगों को अच्छा नहीं लगता तो···मैं चली जा सकती हूं।"

"ऐसा लोगों के बीच अभिप्राय है ?"

"लगता तो है"—उसने एक गुलाब का फूल तोड़कर सूंघा, फिर उसे अपने बालों में खोंस लिया।

मजीद ने टोका—"वह जवाकुसुम ज्यादा अच्छा लगता है।"

सुनकर सुहरा हंस पड़ी। परंतु उसके मुंह पर विषाद छा गया। थोड़ी देर

बाद उसने पूछा—"यह जवाकुसुम याद है ?"

मजीद ने कहा—"सुना है !"

"तो 'जरा एक बड़ा' के बारे में भी सुना होगा ?"

"जी हां ! शाहजादी के मुंह से सुना था।"

वे दोनों परस्पर बहुत नजदीक आये। तो भी मजीद की जिंदगी के सात वर्षों के बारे में वह कुछ नहीं जानती थी। वह उन रहस्यों के अंदर घुसना चाहती थी। उसको सब जानना था। सब परिचित आदमियों और औरतों की बात सुनना था। स्त्रियों की बात आती तो सुहरा पूछती—"उसकी क्या उम्र थी ? कैसा रंग था ? सुंदर थी ? उसको बार-बार याद करते हो ?"

मजीद सब प्रश्नों के उत्तर देता, फिर भी उसे संतोष न होता। ऐसी और कोई बात तो नहीं है जो उसने नहीं कही ?

"मुझसे···मुझसे सच ही बोलना, सुनते हो ?"

मजीद हंसकर कहता—"कैसी लड़की है ?"

"छोकरे !" वह भौंहें तानती, फिर नोचने के लिए आगे बढ़ती और मुसकराती। शुभ्र सुंदर दंत-पंक्ति के बीच वह खाली जगह ! घिसे हुए वे नाखून ! नोचने लगने का वह पुराना भाव ! मजीद के हृदय को आच्छादित करनेवाली पतली चमड़ी पर तेज चीज से मानो घिसा जा रहा हो।

"मजीद और सुहरा के बीच यह क्या है ?" पड़ोसियों की जिज्ञासा जागी।

"वह लड़की अपने आदमी के घर क्यों नहीं जाती ? कुछ भी हो, अल्लाह को मंजूर होगा ?"

"मजीद और सुहरा आपस में बातें करते हैं तो वह सदाचार के खिलाफ नहीं है ? आसमान टूट नहीं पड़ेगा ? उसके आदमी ने एक लात मार ही दी तो क्या हो गया ? भले एक बार मारने से दांत टूट गया हो, फिर भी आखिर पति ही तो है ?"

"सुहरा !" एक दिन मजीद ने कहा—"पड़ोसियों के बीच बहुत बातें होती हैं हमारे बारे में।"

सुहरा ने पूछा—"तो ?"

"कुछ नहीं, सुहरा को सावधान होना चाहिए। औरत की जात हो। नाम में धब्बा न लग जाये।'

"लगे धब्बा ! मेरी रूह को भी लगे ! और किसी से तो नहीं ?"

उसकी आंखें भर आयीं। मजीद को तुरंत कुछ कहने की इच्छा हुई। सुहरा से संबंधित एक निर्णय है। पर कहे कैसे ? सुहरा को देने के लिए पास क्या है ? घर-बार नहीं, धन नहीं, कुछ भी नहीं ! उसने कहा—"सुहरा ! ससुराल नहीं जाना ?

"नहीं।"

मजीद ने अम्मी से बात की। बहुत देर तक उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया, आखिर कहा—"तू सुहरा से शादी करे तो अच्छा है। पर तेरी दो बहनें शादी के लिए बैठी हैं न ? हमारे पास दौलत नहीं रह गयी। तो भी इज्जत-आबरू खो नहीं सकते। बेटा, तू कहीं जाकर आदमी ढूंढ़। औरथोड़ा-बहुत सोना भी इकट्ठा कर। दहेज के लिए पैसा भी। इन दोनों लड़कियों को किसी के हाथ सौंपकर शादी कर लेना, मेरे बेटे !"

आदमी ढूंढ़ लाना काफी नहीं। सोने के गहने और दहेज के लिए पैसा भी चाहिए।

मजीद ने पूछा—"दहेज के बिना कोई शादी नहीं करेगा ?"

"कौन करेगा, बेटा ! नहीं तो कोई मजदूर या ईसाई बना हुआ आदमी मिलेगा। हम यह कैसे कर सकते है ? और कम से कम कान, गले और कमर में तो सोना डाल के देना ही होगा ?"

मजीद की बहनों के चार कानों में मिलकर बयालीस छेद हैं। इतने-सारे छेद क्यों कराये ? गले में, कमर में—कहीं भी सोना न पहनायें तो क्या हो जायेगा ? यह दहेज प्रथा ही न होती···

"अम्मीजान ! यह कान छेदना वगैरह न होता तो कितना अच्छा होता। हमारे समाज में ही इस तरह का बेकार रिवाज क्यों है ? गंदे रिवाज और अजीब तरह के कपड़े। अजीब प्रकार के गहने।"

अम्मी और अब्बा कुछ नहीं बोले। मजीद ने कुछ पूछा भी नहीं। उन बूढ़ों को क्या दोष दिया जाये ? अपनी पीढ़ी के आचारों और मर्यादाओं के अनुसार उन्होंने किया। आवश्यक है या अनावश्यक—इस चक्कर में वे नहीं पड़े। पुराने रीति-रिवाजों से तिनका भर भी हट नहीं सकेंगे। मगर उसी तरह चलने की परिस्थितियां अब कहां हैं ?

मजीद को रात-भर नींद न आती। सदा चिंता में डूबा रहता। बहनों की शादी करा देना है। वे यौवन की तीक्ष्णता में हैं। इच्छाएं-आशाएं भी बहुत हैं। परंतु पहनने को कपड़े नहीं। भोजन भी···कमज़ोरी के क्षण अनेक होते हैं। कहीं एक कदम भी गलत रास्ते पर पड़ गया तो···

उसकी अस्वस्थता बढ़ती गयी। वह बहुत-कुछ करना चाहता था। घर के ऊपर का कर्ज चुका देना है। बहनों की शादी कराना है। मां-बाप के दिल में खुशी हो ऐसे कई काम करने हैं। वे वृद्ध हो गये हैं। मृत्यु किस क्षण आ जायेगी, पता नहीं। उनकी जिंदगी सुखमय बनाना चाहिए।

सुहरा के साथ विवाह करना है। फिर उसकी बहनें हैं, मां है। उनके लिए भी कुछ करना चाहिए। लेकिन क्या करें? सबके लिए आवश्यक चीज़ है—पैसा। कोई भी काम शुरू कर दिया जाय तो आगे चलाया जा सकता है। परंतु शुरू करना ही मुश्किल है। हाथ में पैसे के बिना, और किसी व्यक्ति की मदद लिये बिना आज तक इस दुनिया में कोई कुछ नहीं कर सका।

लेकिन अम्मी का मत इसके विपरीत है। वे कहती हैं—दूर-दूर के शहरों में उदार हृदय वाले मुसलमान हैं। वे समाज की उन्नति के लिए बहुत-कुछ किया करते हैं। अनाथ युवतियों की शादी करवाना, बेकार लोगों को नौकरी दिलवाना, मुफ्त में शिक्षा देनेवाली पाठशालाएं चलाना, अशरणों और विकलांगों के संरक्षण के लिए अनाथालयों की स्थापना करना आदि बहुत-से काम वे करते हैं।

"बेटा! हमारी बात उनके कान में पहुंचना भर ही है। बाकी सब-कुछ वे करेंगे। मैं निश्चय जानती हूं।···उस फकीर ने सब कहा है।"

किसी एक भिखमंगे ने उन्हें बता दिया था कि दूर देश में रहनेवाले धनिक बड़े उदार हैं।

आशंका भरे दिल से मजीद जाने को तैयार हुआ। कहीं भी जाकर कुछ काम करूंगा। उसने सुहरा से सब बात कह दी—"मैं जाकर जल्दी ही लौट आऊंगा। सभी को मैं तुम्हारे हाथों सौंपकर जा रहा हूं।"

"आने तक मैं संभालूंगी।" सुहरा ने भार ले लिया।

एक दृढ़ निश्चय के साथ मजीद निकल पड़ा।

एक शाम को जब पश्चिमी क्षितिज में सुनहले बादल चमक रहे थे, मजीद

की पेटी और बिस्तर लेकर एक लड़का बस-स्टैंड की ओर चला। मजीद ने सबसे विदा ली।

अब्बा ने कहा—"मेरी आंखें कमजोर हो गयी हैं। एक ऐनक ले आयेगा ? नहीं।"

"लाऊंगा" कहता हुआ मजीद अपने कमरे में गया। वहां खिड़की के पास आंखों में आंसू भरे सुहरा खड़ी थी।

"एक बात कहूं ?" उसने पूछा।

मजीद मुसकरा दिया—"कहो, शाहजादी।"

वह कुछ कहने लगी। पर बात पूरी नहीं कर सकी। बस की आवाज सुनाई पड़ गयी। अम्मी ने कमरे की देहली पर आकर कहा—"जल्दी जाओ, बेटा ! बस छूट जायेगी।"

मजीद निकलने लगा तो सुहरा की आंखों से आंसू बहने लगे। उसने इजाजत मांगी—"मैं हो आऊं ?"

सुहरा ने सर झुकाकर अनुमति दे दी।

एक अज्ञात भविष्य की ओर मजीद निकल पड़ा। द्वार पर जाकर मुड़के देखा तो सुहरा और उस घर का जो चित्र उसकी नजरों से गुजरा वह हृदय से कभी मिटनेवाला नहीं था। कई महीने बाद वही फिर से उसकी आंखों के सामने आकर खड़ा हुआ। सो किस तरह !

11

सुहरा से शादी करना है, उसके पहले बहनों के लिए आश्रय-स्थान बनाना है, दहेज और गहने देने के लिए पैसा कमाना है। इस सबका उपाय ?·· नौकरी चाहिए। लेकिन···निराशा ही मजीद के हाथ लगी। नौकरी कहीं भी नहीं है। अगर हो तो भी सिफारिश करनेवाला चाहिए। रिश्वत देना जरूरी है। परीक्षा

में उत्तीर्ण होने का प्रमाणपत्र भी चाहिए । इन सबके बिना नौकरी नहीं मिल सकती। फिर भी वह लगातार खोज करता रहा। कई शहरों में घूमा।

आखिर अपने जन्मस्थान से पंद्रह सौ मील दूर एक बहुत बड़े शहर में जा पहुंचा। इस बीच चार माह बीत चुके थे।

उस शहर में उसे एक नौकरी मिली। नौकरी कुछ खास मुश्किल की नहीं थी। आमदनी भी अच्छी थी। सिर्फ बिना विश्राम के काम करते रहना पड़ता था। चालीस प्रतिशत कमीशन। स्वयं कंपनी के मालिक ने ही वादा किया था।

कंपनी की साइकिल थी। नमूनें ले-लेकर घूमना पड़ता था। रहने के लिए कंपनी में ही जगह मिल गयी थी।

इस प्रकार मजीद काम करने लगा। छोटे-से एक बकसे में नमूने सजाकर रख लेता और आर्डर-बुक लेकर निकल पड़ता। सारे शहर में घूम-घूमकर आर्डर लेता और संतुष्ट होकर लौटता।

इस तरह एक महीना बीता। सब खर्च निकालने के बाद सौ रुपये घर भेजे। अब्बा के लिए ऐनक और सुहरा आदि को कपड़ों वगैरह के लिए भी पैसा भेजा।

और एक महीना पूरा हो गया। अगले क्षण में क्या होनेवाला है, यह कौन जानता है? अनिष्ट की प्रतीक्षा में भी कोई नहीं रहता। फिर मजीद तो किसी भी बात की प्रतीक्षा नहीं कर रहा था। ऐसे में ही एक अप्रतीक्षित दुर्घटना हो गयी।

सोमवार का दिन था। मजीद को भली भांति याद है—ठीक दुपहर! रोज के जैसे बक्से को साइकिल के लैंप की जगह टांगकर समुद्र-किनारे के टाररोड से जा रहा था। उस जगह उतार था। साइकिल तेजी से चल रही थी। इस बीच पेटी का हैंडिल टूट गया और पेटी साइकिल के चक्के के बीच फंस गयी। मजीद साइकिल से दूर जा गिरा—बाजू के एक गहरे गड्ढे में।

शरीर के ऊपर मानो एक बड़ा पर्वत टूट पड़ा है। जैसे कुछ टूटकर चूर-चूर हो गया हो, ऐसी दर्दभरी याद होती है। मालूम होता है कोई चीज शरीर से काटकर अलग कर दी गयी है। सब-कुछ अंधेरे में डूब रहा है। सब विस्मृति के अंधकार में। किसी तूफानी रात के बीच बिजली की चमक के समान कभी-कभी प्रज्ञा का प्रकाश अनुभव होता। भयंकर दर्द। दवाओं की

रूक्ष गंध। लोगों की दर्दभरी कराह। मुंह के अंदर गले से कोई लंबी चीज उतर रही है। गरम पानी जैसी कोई चीज पेट में भर रही है। कुछ लगता है। इसी तरह के अनुभवों से काल चला जा रहा है।

स्मृति बहुत दूर है। कुछ भी स्पष्ट नहीं। सफेद धुआं जैसी, रजत मेघों जैसी—याद मजीद से दूर-दूर जाने लगती···। क्या सब विस्मृति में विलीन हो जाने वाला है ?

नहीं। जीना है। जिंदगी ? तीव्र, कठोर वेदना ! तो भी जीना है ! मजीद ने यत्न किया—अपने को दबानेवाले विस्मृति-पर्वत को समस्त शक्ति एकत्र करके जैसे उसने फेंक दिया···धीरे-धीरे दर्द के साथ होश आने लगा।

उसने एक दीर्घ नि.श्वास छोड़ा। धीरे-धीरे आंखें खोलीं। लंबा होकर लेटा हुआ है। गले तक सफेद चादर ओढ़े हुए है। अस्पताल! उसे सब याद हो आयी।

भीषण वेदना। दायीं ओर कमर के नीचे आग लगी जैसी जलन ! सर में असह्य पीड़ा ! उसने हाथ फेरकर देखा। कमर में बहुत-से कपड़े लपेट रखे गये हैं। वह दायां पैर ढूंढ़ने लगा। अस्थि-पंजर-सी एक ठंडक ! शून्यता !

वह घबरा गया। पसीना आ गया। फिर बेहोशी आने लगी। एक पैर का आधा हिस्सा सदा के लिए नष्ट हो गया है। पड़े-पड़े ही मानो एक अगाध गर्त में गिरने लगा। सारी दुनिया घूम रही है ?

फिर से उसने हाथ लगाकर देखा। नीचे की ओर कुछ नहीं है। केवल असह्य पीड़ा। सुहरा का प्रथम चुंबन पानेवाला वह दायां पैर···वहां गया ?

आंखें खुली थीं। गरम-गरम आंसू दोनों गालों पर बह रहे थे। कंपनी-मैनेजर ने धीरे-से झुककर कहा—"मिस्टर मजीद ! मुझे बहुत अफसोस है। दुखी मत हो !"

"सुहरा !"

"क्या मजीद ?"

"तू हुंकारी क्यों नहीं देती ?"

"मैं हुंकारी देती हूं न ? और छोकरे, मुझे 'तू' क्यों कहता है ?"

मजीद कांप गया। 'सुहरा' पुकारता हुआ वह चौंककर जाग उठा।

"दिन में स्वप्न देख रहे हैं ?" नर्स ने पूछा ।

मजीद ने हंसने का प्रयास किया ।

चौंसठ दिन और चौंसठ रात बीत गये । अपने से भी ऊंची एक लाठी की मदद से कंपनी-मैनेजर के साथ मजीद ने अस्पताल का फाटक पार किया और भीड़ से भरी सड़क पर निकला ।

पचास रुपये मजीद के हाथ में देकर कम्पनी-मैनेजर ने कहा—"अब आप अपने घर लौट जाइये । मुझे भी अफसोस है कि यह सब हो गया !"

मजीद की आंखों से आंसू निकल पड़े । उसने कहा—"मेरी बहनें विवाह की उम्र पार कर घर में बैठी हैं । मां-बाप बूढ़े हो गये हैं । सारी संपत्ति कर्ज में फंस गयी है । पुरुष के नाम पर एक मैं ही घर में हूं । घर की विपत्तियों का परिहार देखे बिना लौट जाने का मन नहीं होता । और इस रूप में वहां जाकर उनकी विपत्तियों को कैसे बढ़ाऊं ?"

"तो अब क्या करना चाहते हैं ?"

"कुछ निश्चय नहीं कर पाता ।"

मेरी कंपनी में आपके योग्य कोई काम·· आप हिसाबनवीस का काम कर सकते हैं ?"

"नहीं । हिसाब में मैं कमजोर हूं ।"

इस प्रकार मजीद फिर अकेला हो गया । उसने चालीस रुपये घर भेज दिये । साथ एक खत भी । उसमें पैर टूट जाने का समाचार नहीं लिखा । केवल इतना ही बताया कि—बीमार पड़ा था, आगे पत्र मिलने तक जवाब मत भेजना ।

वह दूसरी नौकरी ढूंढ़ने लगा । दोनों हाथों से डंडा पकड़कर एक पैर के बल कूद-कूदकर चार कदम बढ़ता, फिर खड़ा हो जाता । खड़े होकर याद करता । फिर चलता । इसी तरह दो माह बीत गये । रहने के लिए कोई स्थान नहीं । जहां पहुंचा वहीं सो जाता ।

आखिर शहर के अमीरों के पास जाकर मदद मांगने का निश्चय किया । खोजने पर एक खानबहादुर के बारे में सुना—बड़े उदार व्यक्ति हैं । शहर के बड़े-बड़े मकान सब उनके ही थे । लोगों का कहना था कि तलघरों में सोने की ईंटें भरी पड़ी हैं । सरकार पर बहुत प्रभाव है उनका । उन्हीं दिनों दस-पंद्रह हजार रुपये खर्च करके गवर्नर को दावत दी थी । वे कुछ भी कर सकते हैं···

कुछ भी !

लेकिन पहरेदार ने मजीद को अंदर घुसने नहीं दिया। रोज वह महल के दरवाजे पर खड़ा होता। इस प्रकार एक सप्ताह बीत गया। आखिर पहरेदारों को भी दया आयी। खानबहादुर के हुजूर में मजीद को प्रवेश मिला।

मजीद ने सलाम किया। एक मुसलमान दूसरे मुसलमान से मिले तो 'सलाम आले कुं' कहना चाहिए। इसलिए मजीद ने वैसा ही कहा। पर पता नहीं क्यों, खानबहादुर ने उस सलाम को तस्लीम नहीं किया। उसे सुनने का भाव तक प्रकट नहीं किया। वे लगभग पचास साल के गोरे, सुडौल आदमी थे। हीराजड़ी अंगूठी की दमक के साथ अपनी दाढ़ी सहलाते हुए उन्होंने मजीद की सारी दुखगाथा सुनी। अंत में उन्होंने कहा—"हमारे समाज में बहुत-सी औरतें हैं, जिनका निकाह नहीं कराया जा सकता। ऐसे भी बहुत लोग है जिन्हें एक वक्त का खाना नसीब नहीं होता। मुझसे जितना बनता है, सबके लिए करता भी हूं। बताओ, इससे ज्यादा मैं क्या करूं?"

मजीद ने कहा कुछ नहीं।

खानबहादुर ने समाज की उन्नति के लिए जो-जो किया था, उन सब महान कार्यों का बखान किया। उन्होंनेचार मस्जिदें बनवायीं, जबकि दूसरे-दूसरे करोड़पतियों ने एक-एक मस्जिद ही बनवाई है। और उन्होने एक स्कूल बनवाने के लिए जमीन भी दान की है। उस जगह पर मकान बनवाकर किराये पर चढ़ाया होता तो हर महीने कितने रुपयों की आमदनी होती? अपने समाज के लिए हर साल कितने रुपयों की हानि बर्दाश्त करते हैं वे? फिर उन्होंने कहा—"इससे अधिक मुझे और क्या करना चाहिए, कहो?"

मजीद चुपचाप खड़ा रहा।

खानबहादुर ने मजीदका पैर टूट जाने पर समवेदनाभी प्रकट की—"भाग्य! और क्या कहें?"

मजीद फिर भी कुछ नहीं बोला।

मर्मव्यथा के साथ सलाम कहकर अपने डंडे के सहारे वह बाहर को चल दिया। देहली के बाहर निकलने को हुआ तब खानबहादुर ने नौकर के हाथ एक रुपया भेज दिया।

"मुझे दे दिया कह दो और तुम ही इसे ले लो"—नौकर से यह कह कर मजीद

चल पड़ा।

उसने वह रुपया क्यों नहीं लिया ? क्या उसको यह नहीं मालूम था कि उस करोड़पति के पास हजारों गरीब जाते हैं और वह उन सबको दान भी देता है ? यदि वह स्वयं करोड़पति होता तो क्या करता ? पहले जो याचक आता उसे अपनी आधी संपत्ति दे देता ? एक तांबे के सिक्के से अधिक कुछ देता ? खानबहादुर ने पूरा एक रुपया दिया था। वह ले लेना उसका कर्त्तव्य नहीं था ? मजीद विचारों में मग्न हो गया। लेकिन उस शहर में करोड़पति केवल पांच ही थे। बाकी साढ़े छह लाख साधारण लोग थे।

पंख टूटे पंछी के समान मजीद खड़ा हो गया।

मजीद का डंडा नीचे से चार अंगुल घिस गया था। हथेलियों में दो-दो सूत ऊंचे ढट्ठे पड़ गये थे। खाना न खाने से शरीर बहुत दुर्बल हो गया था।

उसे एक काम मिला—एक होटल में जूठे बर्तन धोने का काम। सुबह चार बजे उठकर रात को ग्यारह बजे तक नल के पास बैठना पड़ता। एक बड़ी टोकरी में गंदे बर्तन लाकर उसके पास रख दिये जाते। वह उन्हें एक-एक करके धोता और दूसरी साफ टोकरी में रखता। जब वह टोकरी भर जाती, कोई दूसरा उसे उठा ले जाता और दूसरी टोकरी भर बर्तन ले आता। बस यही काम था उसका। पेट भर कुछ खा सकता था। हर महीने पांच रुपये घर को भी भेज सकता था।

घर से पहला पत्र आया—सुहरा बीमार है। वह बहुत कमजोर हो गयी है। थोड़ी-थोड़ी खांसी भी आती है। "यहां सब कुशल है। एक बार देखने को तरस गयी"—आपकी ही, सुहरा।

12

सुहरा को देखने के लिए मजीद भी तरस रहा था। पंद्रह सौ मील दूर बैठकर वह सुहरा को देखता, उसकी खांसी सुनता कुछ-कुछ कहकर उसे सांत्वना देता।

"सुहरा! अब कैसी हो? छाती का दर्द कम है?" फिर घुली हुई प्लेट की तरफ देखने लगता।

रात को लेटते समय सुहरा से कहता—"सो जाओ, मेरी प्यारी! सो जाओ!" पर वह स्वयं देखता था तारे भरे हुए आकाश की नीलिमा को।

कुछ समय बाद और एक पत्र आया। लिखावट सुहरा की नहीं थी। अम्मी ने किसी से लिखवाया था। उसे पढ़ते ही मजीद को लगा—शहर का कोलाहल अचानक रुक गया।

"प्यारे बेटा मजीद,जानने के लिए तुम्हारी अम्मी लिखवाती है। परसों सुबह अपनी सुहरा का इंतकाल हो गया। उसके ही घर में, मेरी गोद में सर रखकर। हम सभी को जो एक मदद थी सो भी गयी। अब अल्लाह को छोड़कर तेरे सिवा कौन है?

"बेटा, पिछले महीने की 30 तारीख को हमारा घर और जमीन कर्जदारों ने कब्जे में ली। खाली कर देने को कह रहे हैं। इन दो लड़कियों और बीमार अब्बाजान को भी लेकर मैं कहां जाऊं?

"बेटा, मुझे सोये बहुत दिन हो गये। तुम्हारी बहनों की हमउम्रवालियां सब तीन-तीन चार-चार बच्चों की मांएं बन गयी हैं। कोई अनहोनी बात हो गयी तो···? यहां के लोगों में जरा भी दया-माया नहीं है! तुम्हारे अब्बा ने और मैंने कितनी ही मिन्नतें कीं, हाथ जोड़े, परंतु वे लोग तुरंत खाली कर देने को ही कहते हैं। हमारे समाज के कितने ही अमीर लोग वहां होंगे। उनसे कहो। कुछ रास्ता वे जरूर निकाल देंगे।

"मेरे बेटे, सुहरा जब तक थी, मुझे बहुत इत्मीनान था। दो महीने से वह बिस्तर पर थी। तपेदिक! मरने के पहले तेरा नाम लिया। तू आया? आया? ऐसा बार-बार पूछती रही। सब अल्लाह की मर्जी!"

खत पढ़ चुकने पर सुहरा का वह रूप मजीद के सामने आकर खड़ा हो गया। किसी विजन, निःशब्द मरुभूमि की विशालता में स्थित शिला-प्रतिमा जैसा बैठा रहा वह। और उसने याद किया सुहरा के जीवन-ग्रंथ के एक-एक पन्ने को शुरू से अंत तक ! अंत ? कहां है अंत ?

उस दिन वह बिदा लेकर निकल रहा था। वह कुछ कहने लगी थी। पूरा करने के पहले ही बस का हार्न गूंज उठा। अम्मीजान आयीं। वह आंगन में उतर आया। बगीचे से होकर देहलीज से निकला। फिर मुड़कर देखा।

पश्चिमी क्षितिज में सुनहले रंग के बादल चमक रहे थे। पेड़, पौधे, घर और बगीचे—सब पीली धूप में निमज्जित थे।

दोनों बहनें दरवाजे के पीछे खड़ी थीं। वे केवल अपने मुख बाहर निकालकर दिखा रही थीं। अब्बा दीवार का टेका लगाये बरामदे में थे। अम्मी आंगन में थीं। सुहरा उस जवाकुसुम के पेड़ को पकड़कर बगीचे में खड़ी थी। उसकी आंखों में आंसू भरे थे।

जो कहती-कहती रह गयी थी, वह तब भी उसके अधरों पर रहा होगा। क्या था सुहरा, जो तुम बोलने लगी थीं ?

डिसेन्ट आफसेट, ए-7 नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।